Chapter-6

षष्ठ अध्याय

सामाजिक पक्ष

प्रस्तावना

गांधीजी का सामाजिक दृष्टिकोण

सियारामशरणजी के काव्य में अभिव्यक्त गांधीजी के सामाजिक सिध्दांत

उपसंहार ।

प्रस्तावना :

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय जनता की सामाजिक दशा क्रमशः हीन होती जा रही थी। जातिपाँति, दहेज, अनमेल विवाह आदि अनेक परंपरागत रूढ़ियाँ तथा कठोर नियम-बंधन समाज को जकड़कर उसकी प्रगति में अवरोध पैदा कर रहे थे। नैतिकता के अभाव में ईर्ष्या, द्वेष, मोह, दैन्य, दौर्बल्य, अशक्ति, हिंसा, स्वार्थ भावना, कायरता, भय, संदेह, भोग विलास आदि विकार समाज में तेजी से पनप रहे थे। इन बुराइयों से ग्रस्त समाज निरंतर पतितावस्था की ओर अग्रसर होता जा रहा था। "समग्र रूप से विचार करने पर समाज की सृजनात्मक और नवनवोन्मेषशालिनी शक्ति का ह्रास हो गया था। उसमें नये प्राण, नयी शक्ति और चेतना फूंकने की आवश्यकता थी।"[१]

---

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य : १८५० से १९०० ई.
डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : पृ. ११

गांधीजी का सामाजिक दृष्टिकोण :

गांधीजी राजनीतिक नेता ही नहीं थे, बल्कि समाज सुधारक भी थे। अत: वे अहिंसा, प्रेम और हृदय परिवर्तन के व्दारा भारतीय समाज के आमूल परिवर्तन के लिये प्रयत्नशील रहे। वे एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे जहाँ सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि हर क्षेत्र में समता हो। उनकी रामराज्य की कल्पना इसी समानता की भूमि पर आधारित है। स्त्री पुरूषों के समान अधिकार होना तथा सभी जाति धर्म के लोगों का समान महत्त्व होना इस समाज की विशेषता है। गांधीजी समाज को घातक कुरीतियों से मुक्त कर आदर्श समाज का निर्माण करना चाहते थे। कहा जा सकता है कि एक प्रकार से गांधीदर्शन स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण को ही प्रस्तुत करता है। गांधीदर्शन से प्रभावित होने के कारण गुप्तजी की दृष्टि भी समाज की ओर विशेष रही है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज व्यक्ति के लिये-अनिवार्य अंग है अत: व्यक्ति और समाज के बीच समन्वय का होना नितांत अनिवार्य है। इसके लिये समाज के छोटे से छोटे अंग की भी सत्ता स्वीकार करनी होगी, उन्हें विशेष सुविधाएँ प्रदान करनी होंगी। समाज के लघु से लघु व्यक्ति के लिये व्यक्तिगत स्वार्थ को त्यागना होगा। सियारामशरणजी ने 'नकुल' में स्वस्थ मानवता की स्थापना के निमित्त गांधीजी के मतानुसार त्याग के महत्त्व का समर्थन किया है :

"लेना होगा निखिल-क्षेम-व्रत निर्भय हमको
देना होगा बड़ा भाग लघु से लघुत्तम को।"[1]

वैयक्तिक स्वार्थ सिध्दि के लिये व्यर्थ ही खींचातानी करना अनिष्टकारक है। सुखमय जीवन के लिये व्यक्तिगत क्षुद्र स्वार्थों का विलयन समष्टिगत स्वार्थों में होना अपेक्षित है। लोक कल्याण की इस विशाल भावना से ही सुखमय जीवन की सिध्दि संभव है, किंतु इसके लिये उदारता अपेक्षित

---

१. नकुल : पृ. ११२

है। जब बड़े स्वेच्छा से छोटों के लिये अधिकार त्याग करेंगे तभी सुख-शांतिमय जीवन की उपलब्धि हो सकेगी। यद्यपि लोक कल्याण की भावना का निर्माण आसान कार्य नहीं तथापि प्रयत्न करने पर इसमें अवश्य सफलता मिलेगी।

गुप्तजी जातीय मतभेद, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, शोषण, अत्याचार, बेगार जैसी सामाजिक बुराइयों तथा रूढ़ मान्यताओं से ग्रस्त समाज को इन बुराइयों से मुक्त कर स्वस्थ मानवता का निर्माण करना चाहते थे। इसके लिये वे गांधीजी के समान आमूल परिवर्तन के आग्रही थे। वे समाज का नवनिर्माण उन्हीं पुरानी मान्यताओं एवं रीति रिवाजों के आधार पर नहीं करना चाहते। उनका मानना था कि रूढ़ मान्यताओं के आधार पर नवीन समाज की नींव डालने पर उसका पुन: पतन अवश्य होगा। अत: वे समाज का निर्माण सर्वथा नये सिरे से करना चाहते हैं:

"मैं सोच नहीं पाता, क्यों ये
करते यह नव निर्माण-कार्य,
उस पहले के ही मलवे से,
जिसका जलना-गिरना अवार्य।"[१]

स्वस्थ समाज की स्थापना अहिंसात्मक मार्ग से ही संभव है। उनकी राय में मानवीय मन का परिष्कार ही वह शस्त्र है जो समाज में प्रचलित अन्याय, अत्याचार और वैषम्य का नाश कर पवित्र जीवनधारा बहाने में समर्थ है। स्वस्थ मानवता की स्थापना के निमित्त ही उन्होंने प्रेम के महत्त्व को प्रतिपादित किया है :

"प्रेम है स्वयं ही प्रेम,
प्रेम की ही अंत में विजय है।"[२]

---

१. दैनिकी : 'नवनिर्माण' कविता : पृ. २७
२. बापू : १० वाँ उच्छ्वास : पृ. ४३

मानवतावादी होने के कारण कवि का हृदय भी गांधीजी के समान इस देश की घोर दरिद्रता और सामाजिक कुरीतियों से प्रभावित रहा है। इस प्रभाव का ही परिणाम है कि कवि ने स्थान स्थान पर ग्रामीण जीवन तथा उसके नारकीय रूप के मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किये हैं। समाज के दलित एवं पीड़ित वर्ग के प्रति कवि की विशेष सहानुभूति है। उन्होंने समाज के दीन हीन उपेक्षित जनों के प्रति करुणाभाव प्राय: अधिकांश रचनाओं में व्यक्त किया है। 'अनाथ' में ग्रामीण जीवन का करुण चित्र अंकित है। इसमें जमींदारी प्रथा, बेगारी, शोषण और पुलिस के हृदयहीन अत्याचारों की करुण कहानी है। 'आर्द्रा' में गार्हस्थिक और सामाजिक जीवन के मर्मस्पर्शी चित्र हैं। समाज की कुप्रथाएँ जो मानव के लिये अभिशाप बन गई हैं, वे जीवन की राह में गतिरोध उत्पन्न करती हैं। आडम्बर और अन्याय, रूढ़ि और कुप्रथाएँ मनुष्य को एकदम पिछड़ा देती हैं। अत: इन रूढ़ियों एवं कुप्रथाओं को मिटाकर समाज का उध्दार संभव है। 'आर्द्रा' में कवि ने अस्पृश्यता, विधवा के प्रति अत्याचार, दहेज प्रथा जैसी अनेक सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया है, तथा इन्हें समाज से निकाल फेंकने का प्रयास किया है। इसमें कवि ने देश की दरिद्रता, अशिक्षा एवं नृशंसता पर भी कटु व्यंग्य किये हैं।

गुप्तजी के काव्य में समाज सुधार के साथ साथ भारतका सांस्कृतिक पक्ष भी परिपुष्ट हुआ है। वे अतीत भारत की पृष्ठभूमि में वर्तमान समाज का सुधार चाहते थे।

अब हम सियारामशरणजी के काव्य में अभिव्यक्ति गांधीवादी सामाजिक सिध्दांतों का अनुशीलन करेंगे।

<u>सियारामशरणजी के काव्य में अभिव्यक्त गांधीजी के सामाजिक सिध्दांत</u> :
<u>वर्णाश्रम धर्म की स्थापना और ऊँचनीच की भावना का विरोध</u> :

गांधीजी की वर्ण व्यवस्था की भावना गीतामें निरूपित कर्म सिध्दांत पर आधारित है। गांधीजी के अनुसार - "वर्णाश्रम धर्म तो

मानवीय स्वभाव में अंतर्ग्रथित है, हिन्दू धर्म ने तो केवल इसे एक वैज्ञानिक रूप दे दिया है। ये चार वर्ण तो मनुष्य के पेशे की परिभाषा करते हैं, वे सामाजिक, पारस्परिक संबंधों को नष्ट नहीं करते।"[१] इसीलिये वे ऊँचनीच की भावना को त्याज्य मानते हैं। वे वर्ण के नाम पर समाज में व्याप्त विषमता को निंदनीय मानते हैं। उनका कहना है कि हमें वर्ण वर्ण के बीच ऊँचनीच का भेदभाव न रखते हुए सभी वर्ण के लोगों को समान मानना चाहिए। गांधीजी अस्पृश्यों के प्रति सवर्णों द्वारा किये जानेवाले अन्याय के कट्टर विरोधी थे। सियारामशरणजी ने भी ऊँचनीच की भावना एवं सामाजिक विषमता का विरोध किया है। उन्होंने 'एक फूल की चाह' नामक कविता में अछूत को मंदिर में प्रवेश कराकर यह बताना चाहा है कि धर्म के नाम पर अस्पृश्यता को कायम रखना अधर्म है। अस्पृश्य भी हमारी तरह मनुष्य हैं। अत: हमें उनसे घुलमिलकर उनका उध्दार करना चाहिए।

समाज में क्रांति की नींव समानता ही है। ऊँचनीच की भावना के कारण ही समाज की अधोगति होती है। समाज की इन असंगतियों, विषमताओं और बुराइयों पर वज्राघात करके उन्हें छिन्न भिन्न करने का प्रयत्न हिन्दी कवियों ने किया है। सियारामशरणजी भी कुल प्रतिष्ठा और जन्मजात ऊँचनीचता को मिटाना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में कोई भी क्षुद्र या महत् नहीं है। सभी मनुष्य एक समान है। 'अनाथ' में कवि ने मोहन एवं यमुना की निर्धनता का करुण चित्र अंकित करते हुए आर्थिक एवं सामाजिक विषमता की ओर संकेत किया है। मोहन अधिक द्रव्य का लोभी नहीं है। वह मुट्ठीभर अन्न ही पाना चाहता है, जिससे कि वह अपने बच्चों की क्षुधा को शांत कर सके। किंतु यह अत्याचारी समाज उसे अपनी न्यायिक आवश्यकताओं की पूर्ति का भी अवसर प्रदान नहीं करता। इसी संदर्भ में कवि ने सामाजिक विषमता पर कटु प्रहार करते हुए लिखा है :

---

१. गांधी और गांधीवाद : डॉ. पट्टाभिसीतारम्मैया : पृ. १८२

"कोई तो बहुवित्त व्यसन में व्यर्थ उड़ावें,
बच्चों के भी लिये अहो ! हम अन्न न पावें !
कैसा है यह न्याय भला, भगवान, तुम्हारा ?
क्या करना है कहो तुम्हें अब और हमारा ?"[1]

हमारे समाज की यही विडम्बना है कि कुछ लोग तो अपार धन संपत्ति व्यसन में व्यर्थ ही उड़ा देते हैं और धन के अभाव में मोहन जैसे असंख्य निर्धन लोग बच्चों के लिये भरपेट अन्न भी नहीं जुटा पाते। कवि को समाज की इस आर्थिक विषमता पर क्षोभ होता है। समाज के द्वारा सताया हुआ यह मोहन जब अपनी एकमात्र अंतिम पूंजी लोटा बेचकर चुटकीभर चून लिये भविष्य के सुनहरे सपने संजोते हुए घर लौट रहा होता है तभी दुर्भाग्य फिर से आकर उसे घेर लेता है। दरोगाजी का नौकर उसे जबर्दस्ती बेगार में पकड़कर ले जाता है। वहाँ उसे कड़कती धूप में हाथ में पंखा देकर बिठा दिया जाता है। दरोगाजी सभी प्रकार की चिंताओं से मुक्त होकर भोजन कर रहे हैं, उनका कुत्ता भी भरपेट भोजन करता है। अत्यधिक धूप व गरमी के कारण कुत्ता आकुल हो छटपटाता है। कुत्ते की अवस्था देखकर दरोगाजी मोहन पर क्रोधित हो जातेहैं और उसे अधिक जोर से पंखा झलने की आज्ञा देते हैं। इस समय मोहन अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए समाज के इस अन्याय पर तीखा व्यंग्य करता है :

"कुत्ते तक भी सानंद पेट भरते हैं,
हैं हमीं लोग जो अन्न बिना मरते हैं।
कुत्तों से भी हम लोग गये बीते हैं,
धिक्कार हमें, हम लोग तदपि जीते हैं।"[2]

गांधीजी सामाजिक अन्याय, अत्याचार एवं शोषण के विरोधी थे। वे समाज को इन बुराइयों से मुक्त करना चाहते थे एवं वर्णभेद को

---

१. अनाथ : पृ. ९
२. वही : पृ. १६

मिटाना चाहते थे। सियारामशरणजी ने भी समाज में निहित इस सामाजिक विषमता पर कटु प्रहार किया है।

'आर्द्रा' की 'नृशंस' शीर्षक कविता में भी आर्थिक विषमता से उत्पन्न सामाजिक विषमता का मार्मिक चित्रण है जिसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप एक पिता अपनी कन्या का विवाह करने के बजाय उसे मृत्यु के हाथों सौंप देना अधिक श्रेयस्कर समझता है :

"रक्षा का करूँ मैं यत्न बेटी किस भाँति आज,
जाने कहाँ खो गई है मेरी लाज ।
मृत्यु से बचा के तुझे,
कौन लाभ होगा मुझे;
छीन लेगा शीघ्र ही तुझे समाज ।
सचमुच आज विष तुझको पिलाऊँगा
मरने ही मात्र को न मैं तुझे जिलाऊँगा ।"[1]

'अब न करूँगी ऐसा' में ऊँचनीच की सामाजिक समस्या का व्यंग्यात्मक चित्रण किया गया है। बालिका मुलिया एक धनी घर में नौकरी करती है। उसे घर के कुछ अन्य कार्य करने के साथ साथ कुएँ से पानी खींचकर कुत्ते को भी स्नान करवाना पड़ता था। किंतु एक दिन बीमारी के कारण वह घर से नहीं आ पाती तथा मजदूरी न मिलने के कारण वह दो दिन से भूखी भी रहती है। अचानक उस धनी व्यक्ति का ध्यान अपने कुत्ते की ओर जाता है और उसे गंदा देखकर वह नौकर को भेजकर मुलिया को पकड़ मंगाता है। वह नौकर उसे कसकर एक थप्पड़ मारता है। किंतु मुलिया काँपते स्वर से अपनी स्थिति का वर्णन कर कुएँ से पानी खींचकर कुत्ते को स्नान कराने लगती है। लेकिन उस व्यक्ति के कान में मुलिया के स्वर गूंजते रहते हैं। एक ओर मालिक का कुत्ता तक भरपेट भोजन पाता है, उसे भोजन न मिलने पर मालिक व्याकुल हो जाता

----

१. आर्द्रा : 'नृशंस' कविता : पृ. ४६

है, वहीं दूसरी ओर अन्न के अभाव में मुलिया फांके कर रही है यह सामाजिक विषमता नहीं तो और क्या है ?

"आ रहे थे मुझ को चक्कर-से ।
नहीं था मेरे घर में नाज;
बिना कलेवा किये इसीसे आज
आई थी मैं घर से ।
मैंने नहीं पिया था जल भी ।
नहीं मिली थी मुझे मजूरी कल भी ।
कुत्ते को नहलाती हूँ मैं, अब न करूँगी ऐसा ।"[१]

इन पंक्तियों में कवि ने एक निर्धन लड़की की विवशता का अंकन किया है जो अपमान एवं मार सहकर भी कुत्ते को नहलाती है । इसमें कवि ने समाज के उच्च वर्गीय सभ्य कहेजानेवाले लोगों के क्रूर व्यवहार पर प्रहार किया है तथा मालिक नौकर के प्रति किये जानेवाले अत्याचार की ओर संकेत कर ऊँचनीच की भावना को प्रकट किया है ।

समाज के प्रताड़ित, उपेक्षित, दलित और कुलगोत्रहीन लोगों के उध्दार का उपदेश कवि ने 'नकुल' खण्डकाव्य में भी दिया है । "कवि का विश्वास है कि काल की अविच्छिन्न धारा निरंतर सम्मार्जन का कार्य करती है । वह अशुभ अवांछित को बहा ले जायगी ।"[२] कवि दलितों, पीड़ितों, कुलप्रतिष्ठाहीनों को प्रतिष्ठित करना चाहता है । यदि इन छोटों का सम्मान नहीं किया जायगा तो क्रांति का विस्फोट होगा :

"कथित बड़ेजन सोच रहे हैं – इस भूतल के,
जन जितने हैं जहाँ कहीं हलके से हलके,
रहने उनके लिये न देंगे संजीवन-कण,
सुख सब अपने अर्थ, अन्य का शोषण, शोषण ?

---

१. आर्द्रा : 'अब न करूँगी ऐसा' : पृ. १२९
२. नकुल : प्रारंभिक पृ. १

उन दलितों में प्रतिक्रिया विस्फोटित होती,
दु:शासन में उभर शांति वसुधा को खोती।"[1]

यदि हमें शांति की स्थापना करनी है तो उचित यही है कि हम ऊँचनीच का भेदभाव न रखते हुए प्रेम का व्यवहार करें तथा बड़े छोटों के लिये स्वेच्छा से अधिकार त्याग करें। दो वर्ग पारस्परिक प्रेम, सौहार्द्र और सद्भावना के आधार पर ही सुखी रह सकते हैं।

साधारणत: नकुल का अर्थ नेवला, शंकरपुत्र आदि होता है किंतु सियारामशरणजी ने नकुल का एक दूसरा अर्थ भी ग्रहण किया है जो उनकी गांधीवादी दृष्टि का परिचायक है। नकुल शब्दका अर्थ समास विग्रह करने पर कुलगोत्र हीन होता है। कुलगोत्रहीन के रूप में नकुल का अर्थ छोटा, लघु या नीच हुआ। यहाँ नकुल लघुता का ही परिचायक है। लघु के प्रतिनिधि के रूप में नकुल काव्य का प्रमुख पात्र है। उसके चरित्र चित्रण से कवि ने समाज के उपेक्षित वर्ग की ओर संकेत किया है। कवि ने नकुल को सबसे कनिष्ठ माना है और सबसे छोटा होने के नाते उसे जीवन भोगने का अधिकारी ठहराया है। नकुल स्वयं पाण्डवों में छोटा होने के नाते किसी प्रकार अधिकार सुख से वंचित रहना नहीं चाहता :

"पीछे आकर नहीं किसी विधि से मैं वंचित,
मेरा भाग्य सुदीर्घ चार अंकों तक संचित।"[2]

नकुल का यह कथन बड़ों के प्रति अटूट आस्था का परिचायक है। सामाजिक जीवन कौटुम्बिक जीवन का विस्तृत रूप ही है। अत: जिस प्रकार कुटुम्ब के जीवन में पूर्ण सामंजस्य की भावना के प्रसार के लिये बड़ों को छोटों के लिये त्याग करना होता है उसी प्रकार समाज के उच्च वर्गीय जनों के लिये यह उचित है कि वे निम्न वर्ग के व्यक्तियों के लिये स्वेच्छा से अपनी सुख संपत्ति का त्याग करे। कवि गांधीवादी है अत: उसकी दृष्टि 'वसुधैव कुटुम्बकम्'[3] की ओर विशेष रही है। वह हृदय परिवर्तन के धर्म में विश्वास

---

१. नकुल : [illegible] : पृ. ११०
२. नकुल : पृ. ५९

करता है। अपने इसी सिध्दांत के कारण गुप्तजी ने नकुल को सबसे छोटा एवं काव्य का मुख्यपात्र बनाकर समाज के उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति का आग्रह प्रकट किया है।

गुप्तजी का मानना है कि मनुष्य का हीनताभाव उसके पतन का प्रधान कारण है। छोटे बड़े का क्षुद्र महत् का भेद संसार में अवश्य रहेगा, वह किसी भी विधि, किसी भी प्रणाली से मिटाया नहीं जा सकता :

"होगा निश्चय क्षुद्र-महत् का भेद भुवन में,
सब हैं एक समान परंतु मरण-जीवन में।"[१]

युधिष्ठिर चूंकि दया, समता और कोमलता का विस्तार चाहते हैं अत: वे क्षुद्र महत् के भेद को त्याग कर दया और समता की भावना की रक्षा करते हैं। उपरोक्त पंक्तियों में जहाँ युधिष्ठिर ने एक और सामाजिक विषमता की कठोर वास्तविकता को स्वीकार किया है वहीं यह भी प्रकट किया है कि इस विषमता को स्वीकार कर लेना आदर्श नहीं है। वे मानवीय समता की यथार्थ सम रेखा प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि भले ही इस जगती में क्षुद्र महत् का भेद हो तदपि मरण एवं जीवन में सभी समान हैं। मानव जीवन का आदि और अंत सम है। केवल उसके मध्य का व्यापार विषम है। यह भी जीवन की वास्तविकता है। क्षुद्र महत् के इस भेद के कारण लघु अपने अहंकार में बड़े से स्पर्धा कर सकता है, किंतु यह स्पर्धा भाव हीनता का भाव पैदा करता है। यह विषमता अनेक रोग और अनेक संघर्षों को जन्म देती है। आर्थिक विषमता के उन्मूलन मात्र से समाज में स्थायी सुख एवं शांति की स्थापना नहीं हो सकती। आर्थिक विषमता तो अन्य अनेक अनिवार्य विषमताओं का एक परिणाम है। कवि मनुष्य के दु:ख का मूल कारण उसके हीनताभाव को ही मानता है। इस हीनता भाव के कारण ही उसमें तृष्णा, असंतोष और अशांति पैदा होती है। उसको दूर करने का एक मात्र उपाय है : न तो अपने लघुत्व

---

१. नकुल : पृ. ११२

या हीनता का अनुभव करना और न महत्व पर अहंकार। प्रत्येक का अपना गौरव है, उस गौरव को उसे सुरक्षित बनाये रखना है। ऐसा करने से ही मानव अपनी खण्डित प्रतिभा का उद्धार कर सकता है। अर्जुन को अविचलित, अप्रभावित और प्रसन्न भाव से अपने ही दरिद्रवेश में ऐश्वर्य के समक्ष उपस्थित कराके कवि ने यही हीनताभाव दूर करने का प्रयत्न किया है।

"अमृतपुत्र" में भी कवि ने ईसु के द्वारा समाज के निम्न जाति के लोगों के प्रति करुणाभाव व्यक्त कर उनके उद्धार का आदेश दिया है।

'सुनंदा' में भी कवि ने ऊँचनीच के वैषम्य का ही समाधान किया है। नंदा जिसका वंश, गोत्र और कुल किसी को ज्ञात नहीं है, जो जाने किस कलंक की कालिख से तमसाच्छादित है, न जाने किस गाड़ीवान के यहाँ पली हुई है, मात्र वही नंदा राजकुमार सुरंजन के प्रेम का पात्र बनती है। सुरंजन यद्यपि अमल वंश का राजकुमार है, जिसे पाने के लिये अमलवंश की असंख्य सुंदरियाँ लालायित हैं, किंतु राजकुमार को मृत्युलोक की सुनंदा ही प्रभावित करती है। उसमें ऊँचनीच का भेदभाव या छोटों के प्रति घृणाभाव नहीं है। इसीलिये अमलवंश की सुंदरियों की उपेक्षा कर वह सुनंदा की खोज में मार्ग की कठिनाइयों की परवाह न कर अपना सर्वस्व त्यागकर निकल पड़ता है। इस तरह सदियों से चले आये सामाजिक वैषम्य का निवारण हो जाता है। यहाँ कवि ने सुरंजन के द्वारा निम्नजाति की सुनंदा के महत्व को ही प्रतिपादित किया है।

अस्पृश्यता निवारण की भावना :

महात्मा गांधी के अठारह सूत्रीय रचनात्मक कार्यक्रम में साम्प्रदायिक एकता के पश्चात् अस्पृश्यता निवारण की ही चर्चा की गई है। गांधजी को यह कदापि स्वीकार न था कि जन्म के आधार पर किसी भी व्यक्ति या समूह को सामाजिक संस्तरण में सबसे निम्न स्थान दिया जाय। उन्होंने कहा भी है - "कोई जन्म से अछूत नहीं हो सकता, क्योंकि सभी उस

एक आग की चिनगारियाँ हैं, कुछ मनुष्यों को जन्म से ही अस्पृश्य समझना गलत है।"[1] साथ ही वे यह भी कहते हैं -"यदि विश्व में जो कुछ है, सभी ईश्वर से व्याप्त है- अर्थात ब्राहमण और भंगी, पण्डित और मेहतर, भले ही वे किसी भी जाति के हों, यदि इन सब में भगवान विद्यमान है- तो न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा, सभी सर्वथा समान है। समान इसलिये कि सब उसी सृष्टा के प्राणी हैं।"[2] गांधीजी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का कलंक मानते थे। उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता वास्तव में सामाजिक समस्या ही नहीं थी बल्कि एक अमानुषिक प्रथा थी जिसे मिटाना आवश्यक था। अस्पृश्यता निवारण का अर्थ है अछूतों को सार्वजनिक संस्थाओं में प्रवेश कराना, स्कूल और मंदिर में प्रवेश कराना, तथा छूआछूत की भावना को मिटाना। व्यापक अर्थ में जीव मात्र के साथ भेद मिटाना ही अस्पृश्यता का निवारण करना है। गांधीजी अस्पृश्यों के उध्दार के लिये सदैव प्रयत्नशील रहे। गांधीजी के इसी मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रभाव आधुनिक कवियों पर भी पड़ा तथा उनके मन में समाज में उपेक्षित अस्पृश्यों के प्रति सहानुभूति जागी। अछूतों की शोचनीय अवस्था ने उनके संवेदनशील मन को अत्यधिक झंझोड़ा। कवियों ने अछूतों की दु:खद स्थिति पर दृष्टि निक्षेप करते हुए उन पर होनेवाले अन्याय एवं अत्याचारों का वर्णन किया इस प्रकार के अन्याय और अत्याचार का वर्णन सियारामशरणजी ने 'आर्द्रा' की 'एक फूल की चाह' कविता व्दारा प्रस्तुत किया है। इसमें अछूतों के प्रति किये जानेवाले अन्याय का दिग्दर्शन कराया गया है। अछूत बालिका सुखियाशीतला की महामारी का शिकार होती है। रूग्ण बालिका के मन में देवी के प्रसाद के फूल की चाह उत्पन्न होती है। पिता अपनी सामाजिक स्थिति से भलीभाँति परिचित है तथापि वह बेटीकी इस आकांक्षा को पूरी करने के लिये सामाजिक बाधा व्यवधान की परवाह न कर अपने सदुद्देश्य में विश्वास करके देवी का एक फूल लेने के लिये स्नानादि से शुध्द होकर चुपके से मंदिर में जाता है। उसके प्रवेश मात्र

---

१. सियारामशरण गुप्त की काव्यसाधना : डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र : पृ. १४९ से उद्धृत

२. वही

से ही मंदिर की चिरकालिक पवित्रता नष्ट हो जाती है जिसके फलस्वरूप उसे कराघात ही नहीं बल्कि राज्याघात और दैवाघात भी सहने पड़ते हैं। रूढ़िवादी धर्मावलम्बियों द्वारा अपमानित होना पड़ता है। पण्डे लोग उसे पकड़कर खूब मारते हैं और अंत में न्यायालय उसे एक सप्ताह का दण्ड देता है। इस बीच में सुखिया बेचारी तड़प तड़प कर प्राण त्याग देती है। एक सप्ताह बाद जब उसका पिता कारावास दण्ड भोगकर आता है तब उसे बेटी की मृत्यु के दु:खद समाचार मिलते हैं। बेटी की मौत केउपरांत जब पिता बेटी की सूनी चिता को देखता है तब उसका करुण क्रंदन मन को सहज कचोटने लगता है।

"अंतिम बार गोद में बेटी, तुझको ले न सका मैं हा!
एक फूल माँ का प्रसाद भी तुझको दे न सका मैं हा!
वह प्रसाद देकर ही तुझको जेल न जा सकता था क्या ?
तनिक ठहर ही सब जन्मों के दण्ड न पा सकता था क्या ?"[1]

अपने आपको उच्चवर्ग का समझनेवाले लोग अछूतों पर जो नृशंसतापूर्ण अत्याचार करते हैं उसे देख कवि का संवेदनशील हृदय चीत्कार कर उठता है। इसमें कवि ने हिन्दू समाज की रूढ़िवादिता पर भी कटु प्रहार किया है :

कैदी कहते, "अरे मूर्ख, क्यों
ममता थी मंदिर पर ही ?
पास वहाँ मस्जिद भी तो थी
दूर न था गिरजाघर भी।"[2]

सियारामशरणजीने हरिजन का मंदिर में प्रवेश कराकर सुधारवादी दृष्टिकोण ही प्रस्तुत किया है। महात्मा गांधीने हरिजनों के मंदिर प्रवेश के लिये अनेक प्रयत्न किये थे। निम्न लिखित पंक्तियों में सियारामशरणजी भी

---

१. आर्द्रा : 'एक फूल की चाह' कविता : पृ. ६३
२. वही : पृ. ६२

हरिजनों में आत्मविश्वास और नैतिक साहस पैदा करने का आहवान करते हैं :

"तुझ पर देवी की छाया है,
और इष्ट है यही तुझे,
देखूँ देवी के मंदिर में
रोक सकेगा कौन मुझे।"[१]

गांधीजी अस्पृश्यों के सर्वत्र आनेजाने तथा शामिल होने के समर्थक थे। "सार्वजनिक मेले, बाजार, दूकान, मदरसे, धर्मशालाओं, मंदिर, कुएँ, रेलें, मोटरें इत्यादि में जहाँ कहीं दूसरे हिन्दुओं को आजादी से जाने और उनसे लाभ उठाने का अधिकार हो वहाँ अस्पृश्यों को भी अवश्य अधिकार है।"[२] सियारामशरणजी भी हरिजनों का मंदिर प्रवेश करना अनुचित नहीं समझते थे। उन्हें हरिजनों के उपेक्षित होने पर अत्यधिक क्षोभ होता था। वे उनकी पवित्रता का समर्थन करते हुए एक हरिजन व्दारा यह उद्‌गार प्रकट करवाते हैं :

" ऐं, क्या मेरा कलुष बड़ा है
देवी की गरिमा से भी;
किसी बात में हूँ मैं आगे
माता की महिमा के भी ?"[३]

इस प्रकार प्रस्तुत कविता में गांधीजी के अस्पृश्यता निवारण संबंधी विचारों का ही समर्थन हुआ है। सियारामशरणजी ने उच्च वर्ण के लोगों व्दारा अस्पृश्यों पर किये जानेवाले अत्याचारों का मार्मिक चित्र अंकित कर अस्पृश्यों के प्रति संवेदना प्रकट की है। "इस कविता से सियारामशरणजी को बहुत लोकप्रियता मिली है। यह कविता अछूतों को मंदिर प्रवेश के पक्ष में वह काम कर सकती है जो सैकडों पैम्पलेट भी न कर सकेंगे।"[४]

---

१. आर्द्रा : 'एक फूल की चाह' : पृ. ५८
२. गांधी विचार दोहन – किशोरलाल मशरूवाला : पृ. ४४
३. आर्द्रा : 'एक फूल की चाह' : पृ. ६०
४. प्रताप : सियारामशरण अंक : श्री. बनारसीदास चतुर्वेदी : पृ. १९

'अमृतपुत्र' रचना का उद्देश्य भी बहुत कुछ गांधीवादी विचारधारा का विवेचन करना ही रहा है। इस कृति में योशू द्वारा सामरी के सदृश नीच एवं अधम के हाथ का पानी पीना हमें भारत की उन हरिजन बस्तियों की स्मृति करा देता है जहाँ गांधीजी बहुधा जाकर रहते थे। ईशु ने नीच, घृणित और अस्पृश्य लोगों का उध्दार किया। ये अस्पृश्य लोग चिरकाल तक नीच ही बने रहते यदि ईशु की कृपा उन्हें प्राप्त नहीं होती। ईशु ने इनके प्रति मानवतावादी रूख अपनाकर इन दीन दुर्बल दुखियों के घर तीर्थ के समान यात्रा करने योग्य बना दिये। ईशु का अपने शिष्यों को यही उपदेश था :

"ईसुका आदेश – सविनय नम्र नत
शिष्य सादर जायँ उनके बीच में
बरसती जिन पर सदैव घृणा रही
गगन-क्षिप्त हिमोपलों की भाँति है।
कठिन जो जब तक न आप घुलें-मिलें
भार सम गिरे-पड़े रह जायेंगे।"[१]

ईसु की दृष्टि में कोई भी मनुष्य घृणित नहीं था। अत: उनका अपने शिष्यों को आदेश था कि वे उन पद्दलित मानवों के बीच में जायँ जिनपर सदैव ही हिमपातों की तरह घृणा बरसती रही है। जब तक हम स्वयं उनसे घुलेंगे नहीं, तब तक उनको ऊपर उठाना असंभव होगा। इन दलितों को ऊपर उठाने के लिये आवश्यकता इस बात की है कि हम जातिपाँति के भेद को त्यागकर उनसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करें। यहाँ गुप्तजी ने ईसु के माध्यम से प्रकारांतर से अस्पृश्यों के प्रति अपनी संवेदना प्रकट कर उनके उध्दार के लिये ही प्रेरित किया है।

साम्प्रदायिक एकता का आग्रह :

साम्प्रदायिक एकता स्थापित करना गांधीजी का महान लक्ष्य था। वे केवल भारत में ही नहीं वरन् समस्त विश्व में इस प्रकार की एकता स्थापित

---

१. अमृतपुत्र : पृ. २४

करने के पक्ष में थे। यह एकता धर्म, जाति और समाज में स्थापित हो इसके लिये गांधीजी कृत संकल्प थे। भारत सब की जन्मभूमि है और इस नाते मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, सब भाई भाई हैं। जब तक भारतीयता धार्मिकता की संकीर्ण प्राचीरों में बंदी बनी रहेगी, तब तक स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता और उत्थान की कल्पना कभी साकार हो ही नहीं सकती। गांधीजी का विश्वास था कि भारत में हिन्दू-मुसलमान साथ साथ रह सकते हैं।

गांधीजी के समान गुप्तजी भी जातीयता के कट्टर विरोधी रहे हैं। गुप्तजीने यह भलीभाँति अनुभव किया कि अंग्रेज जाति हमारे राष्ट्रीय हितों पर निरंतर प्रहार करने के लिये हमारे ही देशवासियों में परस्पर घृणा, विव्देष, साम्प्रदायिकता का विष फैलाने में सक्रिय है। अत: उन्होंने अपनी लेखनी व्दारा साम्प्रदायिक विव्देष के विरोध स्वरूप राष्ट्र की नाना जातियों में परस्पर भ्रातृभाव जगाने का प्रयत्न किया। वे भारत में निवास करनेवाली समस्त जातियों में एकता के दर्शन करने के इच्छुक थे। वे संपूर्ण भारतीय समाज में परस्पर प्रेम, सहयोग और एकता के पक्षपाती हैं। गुप्तजी ने सामाजिक उत्पीड़न, अत्याचार और धार्मिक असहिष्णुता की कटु शब्दोंमें निंदा की है और जातीय एकता के प्रति आग्रह प्रकट किया है क्योंकि इसी एकता पर देश का भावी निर्भर करता है।

साम्प्रदायिक एकता का आग्रह गुप्तजी के 'आत्मोत्सर्ग' काव्य में प्रकट हुआ है। साम्प्रदायिकता की आग को प्रज्वलित होते देखकर कवि मैथिलीशरण गुप्त ईश्वर से प्रार्थना करते हैं :

"दैव दया कर हमें बुध्दि दे-यह क्या किया, विचारें हम;
करके कुछ अनुताप आपको, आप उबारें, तारें हम।
दो पडोसियों के विग्रह की, आग कहीं यह बुझ जावे
तो फिर भी तेरे शोणित का मूल्य हमारा मन पावे।"[१]

---

१. आत्मोत्सर्ग की भूमिका में स्व. श्री. मैथिलीशरणजी व्दारा लिखित रचना से पृ. ६

एक ही धरती पर जन्मे, एक ही माँ की संतान के बीच इतना अलगाव देखकर कवि को क्षोभ होता है। उनकी दृष्टि में सभी जातियों के मनुष्य भाई समान है और अपने भाइयों पर जोर आजमाना पाप है :

"अपने भाई के ही ऊपर
यदि तुम जोर जमाओगे,
तो अन्याय मिटाने जाकर
क्या यह न्याय कमाओगे"[1]

इसीलिये कवि का आदेश और संदेश है कि भेदभाव में पड़ी जनता अपनी स्थितियों से लड़े तो निश्चय ही विजय प्राप्त होगी। धर्म के नामपर लड़ने वाले भारतवासी पारस्परिक वैमनस्य को लेकर कभी स्वतंत्र नहीं हो सकते। बापू ने हिन्दू और मुसलमानों को शरीर की दो बाजुओं के समान माना था। उनका विश्वास था कि दोनों बाहों की सम्मिलित शक्ति से ही भारत स्वतंत्र हो सकता है। 'आत्मोत्सर्ग' में इसी भाव को व्यक्त किया गया है। इसमें कवि ने साम्प्रदायिक दंगों का यथार्थ चित्र अंकित करते हुए विद्यार्थीजी के बलिदान के प्रसंग में दंगों पर तुली हुई उत्तेजित जनता को संबोधित करते हुए दोनों जातियों की एकता तथा राष्ट्रीय उत्थान की प्रबल इच्छा व्यक्त की है :

"हिन्दू-मुसलमान दोनों ही एक डाल के हैं दो फूल;
और एक ही है दोनों का बड़ा बनानेवाला मूल।"[2]

x x x x x

अब मत भोगो, अपने हाथों अरे बहुत तुमने भोगा,
हिन्दू-मुसलमान दोनों का यह संयुक्त राष्ट्र होगा।"[3]

निम्नलिखित पंक्तियों में भी कवि ने साम्प्रदायिक दंगों की निंदा करते हुए हिन्दू तथा मुसलमानों को भाई के रूप में ही चित्रित किया है :

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. १७
२. वही : पृ. ४९
३. वही : पृ. ६१

"अरे भाइयों, कुछ तो सोचो,
यह क्या करने जाते हो;
शत्रु नहीं सम्मुख है भाई;
किन पर हाथ उठाते हो ?"[१]

इसमें संदेह नहीं कि आत्मोत्सर्ग में सर्वत्र ही संकीर्णता एवं रूढ़िवादिता का तिरस्कार किया गया है और गांधीजी के इस दृष्टिकोण का समर्थन किया गया है कि "अहिंसा हमें यह सिखाती है कि हम दूसरों के धर्म का उतना ही आदर करें जितना अपने धर्म का करते हैं।" 'आत्मोत्सर्ग' में सियारामशरणजी ने भी भारतीयों को गौतम बुध्द की अहिंसा की स्मृति कराकर उन्हें हिंसा भावना से दूर रखने का प्रयत्न किया है। वे इस काव्य-कृति में यही कहते हैं :

"पश्चिम पोत चुका मस्तक पर अपने प्रभु ईसा का रक्त;
पर तुम अपने बुध्द देव के रहो अखण्ड अहिंसक भक्त।"[२]

कानपुर में हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मांधता से मनुष्यत्व को भूलकर पशु के समान मारकाट करने लगे। इससे गणेश शंकरजी अत्यंत दु:खी हुए। धर्मांध हिन्दू मस्जिद पर चढ़ते थे और धर्मांध मुसलमान हिन्दू देवालयों को क्षति पहुँचाते थे। विद्यार्थीजीने दोनों धर्मावलम्बियों को प्रेम का महत्त्व समझाकर परस्पर मिलझुलकर रहने का संदेश दिया।

कवि का उद्देश्य हिन्दू मुसलमान वैमनस्य को अपनी लेखनी व्दारा शांत करना रहा है। इसी कारण काव्य के अंत में प्रेम और एकता का संदेश और सर्वहित प्रतिपादन की कामना व्यक्त हुई है :

"निखिल विश्व में परिव्याप्त हो,
मति वह सर्वहिता तेरी;
घर घर ज्ञान-प्रदीप जला दे
मरणोद्दीप्त चिता तेरी।"[३]

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. १८
२. वही : पृ. ४६
३. वही : पृ. ७२

'नोआखलीमें' भी कविने हिन्दू मुसलमान की साम्प्रदायिक कट्टरता, पारस्परिक कलह तथा दंगों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। मानवता के पतन की ओर संकेत करते हुए कवि ने समस्त भारतवासियों को जातिधर्म की संकीर्ण कारा से मुक्त होने की प्रेरणा दी है। सम्पूर्ण रचना हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल देती है। पुस्तक के प्रारंभ में कविने अग्रज श्री. मैथिलीशरण गुप्त की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की है जो एकता की ओर संकेत करती है :

"एक हमारे पूर्व पुरूष हैं
एक भूमि-नभ, एक निवास,
एक अन्न-जल से निज जीवन
एक पवन में श्वासोच्छ्वास।"[1]

'अखण्डित' नामक कविता में हिमालय और गंगा की अखण्डता का वर्णन कर कवि ने भारत की अखण्डता का प्रतिपादन किया है तथा देश की भावनात्मक एकता पर बल दिया है :

"मेरा सलिल अटूट अमंद,
यहाँ वहाँ मेरी धारा में,
एक प्राण-गति है निर्व्दन्व्द।"[2]

'मातृभूमि के प्रति' कविता में कवि ने देश की विदग्ध अवस्था का चित्रण किया है तथा यह दर्शाया है कि साम्प्रदायिक दंगे देश को कलंकित करते हैं। इससे मातृभूमि वसुंधरा के मन को बहुत क्षोभ होता है। भारत अब तक किसी के सामने नतमस्तक नहीं हुआ। किंतु अपनी ही संतान की काली करतूतों से उसका मस्तक झुक गया है :

"समझ रहा हूँ, समझ रहा हूँ तेरा दु:ख यह आज;
तेरे ही तनुजात रहे वे रही न जिनको लाज।

---

१. नोआखली में : मैथिलीशरणजी व्दारा लिखित कुछ पंक्तियों से उद्धृत - पृ. ६
२. नोआखली में : 'अखण्डित' कविता - पृ. १०

थे ऐसे कापुरुष कि लेकर संख्या का बल-दर्प
अबलों, अबलाओं को लूटा, गिरी न उन पर गाज ।"[1]

'अक्षय' में कवि ने दोनों जातियों की साम्प्रदायिक भावना का चित्रण किया है। हिन्दू मुसलमान दोनों एक दूसरे से प्रतिशोध लेने को तत्पर हैं। किंतु वे यह भूल जाते हैं कि सब एक ही ईश्वर की संतान हैं। जब तक हमारा लक्ष्य महान है और हम अपनी प्रतिष्ठा-मर्यादा की रक्षा करने को तैयार हैं तब तक हमारे अधिकार सुरक्षित हैं और हमारे धर्म पर कुठाराघात नहीं हो सकता।

भ्रातृत्व भावना के प्रसार के लिये सहनशीलता की आवश्यकता है। 'ग्यारह दोहे' कविता में कवि ने इसी सहिष्णुता के भाव को अपनाने का आग्रह प्रकट किया है :

"तुम हमको, हम भी तुम्हें सहन करें सप्रेम,
दोनों की इस जीत में दोनों का है क्षेम।"[2]

इसमें संगठन शक्ति की महत्ता पर भी प्रकाश डाला गया है। ग्यारह के प्रतीक से कवि ने हिन्दू मुसलमान की मानवीय धरातल पर अभेदता का प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार एक एक के सम्मिलन से ग्यारह होते हैं उसी प्रकार हिन्दू और मुसलमान की संगठित शक्ति भारत के लिये महान शक्तिपुंज बन सकती है।

"रमजानी" में भी पारस्परिक सौहार्द्र का ही वर्णन किया गया है।

'ध्वसं' कविता में साम्प्रदायिक उपद्रवियों द्वारा जलाये गये ध्वस्तमकान का शब्दचित्र अंकित किया गया है और धर्मांध लोगों की भर्त्सना की गई है :

---

१. नोआखली में : 'मातृभूमि के प्रति' कविता : पृ. ११
२. नोआखली में : 'ग्यारह दोहे' कविता : पृ. १४

"'दीन-दीन' की 'धर्म-धर्म' की,
चिल्लाहट कर करके,
आये थे जो मुझे जलाने
घृणा-भावना भरके,
थे वे कौन, कहूँ क्या यह भी ? -
रहें कहीं मिल-जुलके,
गुन्डे गुन्डे ही हैं केवल,
नहीं धर्म के, कुल के।"[1]

'नोआरवली में' कवि ने साम्प्रदायिक अग्नि के शिकार बने हुए जनजीवन का चित्रण कर धर्मांध लोगों की भर्त्सना की है। हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य के फलस्वरूप हुए हिंसा के ताण्डव और बर्बरता को देख कवि की आत्मा चीत्कार कर उठी :

"पशु तू ऊपर उठा, आज तक
उठा नहीं इसका स्तर है,
रात भींगकर भारी भारी,
यह मँझधार सुदुस्तर है।"[2]

देश में समस्त धर्मावलम्बी एक होकर रहें, इस बात का प्रतिपादन उन्होंने 'नोआरवली में' किया है :

"मनुज न हों तो हिन्दू, मुस्लिम,
बौध्द, जैन, सिख, ईसाई,
इसकी यह पीड़ा लें आकर
वे सब जिनमें हों भाई।"[3]

महात्मा गांधी भारत भूमि से धार्मिक कट्टरता को सदा के लिये समाप्त करना चाहते थे। 'एक हमारा देश' में सभी महापुरुषों की एकता की

---

१. नोआरवली में : 'ध्वंस' कविता : पृ. ३१
२. नोआरवली में कविता पृ. ४६
३. वही : पृ. ४८

ओर ही संकेत किया गया है :

"अगणित धाराओं का संगम, मिलन-तीर्थ-संदेश;
एक हमारा ऊँचा झंडा, एक हमारा देश।"[1]

इस प्रकार 'नोआखली में' संकलित कविताओं में मानवता के पतन की ओर संकेत करते हुए समस्त भारतवासियों को जाति धर्म की संकीर्णता से मुक्त होकर उन्मुक्त वायु में मानवता का विकास करने की प्रेरणा दी गई है।

<u>नारी जीवन के विविध पक्षों : विधवा समस्या तथा वेश्या समस्या की अभिव्यक्ति</u> :-

भारत में अस्पृश्यता और हिन्दू मुस्लिम विद्वेष के समान नारी दुर्दशा भी एक अभिशाप है। यह अभिशाप भारत की उन्नति में बाधा उत्पन्न करता है। इसीलिये गांधीजीने इस बाधा को भी अन्य बाधाओं के समान दूर करके भारत को मुक्त करने का प्रयास किया। महात्मा गांधी नारी को श्रध्दा की प्रतिमूर्ति मानते थे। वे पुरुषों के समान स्त्रियों को भी समान अधिकार दिलाने के पक्षपाती थे। उनका मानना था कि स्त्री पुरुष दोनों ही समाज को गति देनेवाले आवश्यक अंग है। अत: बौध्दिक एवं सामाजिक दोनों स्तरों पर उनका समान होना आवश्यक है। यही कारण है कि उन्होंने पुरुषों के समान ही स्त्री शिक्षा का भी समर्थन किया। वे नारी का कार्यक्षेत्र घर ही मानते थे। उनका कहना था "मैं स्त्री पुरुष की समानता में विश्वास रखता हूँ। इसलिये स्त्रियों के लिये उन्हीं अधिकारों की कल्पना कर सकता हूँ जो पुरुष को प्राप्त हैं।"[2] वास्तव में वे स्त्रियों को अधिकाधिक स्वतंत्रता प्रदान करना चाहते थे। वे नारीको पुरुष से भी अधिक श्रेष्ठ बताते हुए कहते थे "स्त्री पुरुष में चारित्र्य की दृष्टि से स्त्री का आसन ज्यादा ऊँचा है क्योंकि आज भी वह त्याग, मूक तपस्या, नम्रता, श्रध्दा और ज्ञान की प्रतीक है।"[3] स्पष्ट है कि

---

१. नोआखली में - 'एक हमारा देश' कविता : पृ. ५२
२. सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना : डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र : पृ. १५० से उद्धृत
३. वही

गांधीजी का नारी संबंधी दृष्टिकोण अत्यंत उदार एवं सहानुभूतिपूर्ण है। वे नारी को अबला ही नहीं, अपार शक्ति संपन्न मानते हैं। इस विषयमें उनका कहना है-"स्त्री जाति में छिपी हुई अपार शक्ति उसकी विद्वत्ता अथवा शरीर बल की बदौलत नहीं है, इसका कारण उसके भीतर भरी हुई उत्कट श्रध्दा, भावना का वेग और अत्यंत त्याग शक्ति है।"[१]

गांधीजी भारतीय नारी की गिरी हुई दशा से व्यथित थे। अत: उन्होंने नारी की गिरी हुई दशा को सुधारने का भरसक प्रयत्न किया। बापू की दृष्टि में नारी शील और सद्गुणों की प्रतिमूर्ति थी। गांधीयुग से प्रभावित कवियों ने इसीलिये नारी के इसी गौरवमयी रूप की प्रतिष्ठा अपने काव्य में की है। गांधीदर्शन से प्रभावित कविवर सियारामशरण गुप्त ने भी नारी के इसी आदर्श रूप को ग्रहण किया है। गांधीजी के नारी संबंधी विचारों से सियारामशरणजी अत्यधिक प्रभावित हैं। अत: हिन्दू नारी जीवन की जिन समस्याओं की ओर महात्मा गांधी ने समाज का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया था उन्हीं समस्याओं को कथात्मक रूप से प्रस्तुत कर गुप्तजी ने भी समाज में नारी दुर्दशा की ओर संकेत कर उसके उध्दार का प्रयास किया है। इस दृष्टि से 'आर्द्रा' विशेष उल्लेखनीय काव्यकृति है। इसमें हिन्दू नारी की विविध समस्याओं का अंकन किया गया है। 'खादी की चादर' में विधवा नारी के प्रति किये जानेवाले सामाजिक अत्याचार का निरूपण है, 'नृशंस' में दहेज प्रथा के कारण व्यथित परिवार की हृदय विदारक कथा है। 'अग्नि परीक्षा' में हिन्दू नारी के सतीत्व का अंकन किया गया है। सुभद्रा उपद्रवियों व्दारा अपहृत होकर भी पवित्र लौट आती है। परंतु उसका पति गुलाबचंद उसे विशुध्दता के लिये सीता के समान अग्नि परीक्षा देने को कहता है। सुभद्रा जल समाधि लेकर अपनी पवित्रता का प्रमाण प्रस्तुत करती है। डूबने से पूर्व वह पति के इस सामाजिक प्रतिष्ठा के आडम्बर पर कटु प्रहार करती है :

---

१. गांधीविचार दोहन ÷ किशोरलाल मशरूवाला : पृ. ४३

"मुझ पर जैसा क्रूर तुमने प्रहार किया,
नारकियों ने भी नहीं वैसा घोर वार किया।"[1]

इनके काव्य में नारी के विविध रूपों का वर्णन है। नारी के माता, बहन, पुत्री, पत्नी और प्रेयसी सभी रूप मिलते हैं। नारी के लिये उनके मन में श्रध्दा, सम्मान और सहानुभूति की भावना है। अत: जब वे देखते हैं कि पुरुष नारी के त्याग और बलिदान पर ध्यान न देकर उसे केवल भोगका साधन मान उसका अपमान करने से भी नहीं चूकता तब वे उसके उध्दार के लिये व्यग्र हो उठते हैं :

"नारी जन की पुण्य प्रतिष्ठा छल-बल-पूर्वक,
खल दु:शासन के अशोक वन में है अब तक।
करना है उध्दार वहाँ से उस विकला का;
ध्यान हमें है प्रिये, निरंतर उस विमला का।"[2]

लज्जा अपहृत नारी की अवदशा को देखकर कवि का मन क्षोभ से भर उठता है। नारी के प्रति पुरुष के निष्ठुर एवं निर्मम व्यवहार पर कवि ने क्षोभ व्यक्त किया है। 'नकुल' में एक स्थान पर द्रौपदी के चीर हरण की चर्चा व्दारा पुरुष केकटु व्यवहार पर आक्षेप किया गया है :

"चाहो देखो वहीं केश-कर्षित कृष्णाएँ,
तब भी नहीं प्रशांत व्दिपद-पशु की तृष्णाएँ।"[3]

धर्म की ओट में नारी के साथ जो निकृष्ट व्यवहार किया जाता है वह 'धर्मेण हीन: पशुभि: समान' से भी गर्हित है। वे इसे मानवता का अध:पतन मानते हैं। 'नोआखली में' कविता में कवि ने अपहृत अमला के प्रति क्षोभ प्रकट किया है :

"अमला नहीं, हुई अपहृत वह,
मानवता ही दीन मलीन,

----
१. आर्द्रा : 'अग्नि परीक्षा' : पृ. ७३
२. नकुल : पृ. ७१
३. वही : पृ. ६९

न हो, न हो विस्तीर्ण धरा यह
उसके लिये स्वबन्धु-विहीन ।"[1]

समाज के व्दारा प्रताड़ित, पीड़ित एवं अपहृत नारी यदि प्रयत्न करके अपनी लाज बचाकर पवित्र लौट भी आती है, तब भी समाज उसे सम्मानित स्थान नहीं देता। उसे अपवित्र या कुलटा कहकर समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। पति भी पत्नी की विडंबना से अनजान हो समाज की झूठी मान मर्यादा के झोंक में पड़कर पत्नी को तरह तरह से अपमानित कर त्याग देता है। नारी के भाग्य की इस घोर विडम्बना पर भी कवि ने क्षोभ प्रकट किया है :

"ठौर नहीं तेरे लिये घर में,
चाहे तू स्वयं हो सती,
पुण्यवती।
तुझसे बड़ा है धर्म, कैसे मुँह मोड़ लूँ,
तेरे लिये कैसे उसे छोड़ दूँ ?"[2]

यहाँ कवि ने समाज धर्म की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि क्या पीड़ितों को पीड़ा पहुँचाना ही समाज का धर्म है ? जब भगवान श्रीरामचंद्रजी ने जनक राज की पुत्री जो राक्षसों के घर में बंदिनी बनकर रही, उनको नहीं तजा तब क्या गुलाबचंद का समाज धर्म की आड़ लेकर सुभद्रा को तजना कहाँ तक उचित है :

"किंतु क्या यही है धर्म ?
पीड़ितों का पीड़न, यही है कर्म ?
राक्षसों के गेह रहीं बध्द श्रीजनक जा,
तो भी नहीं राम ने उन्हें तजा।"[3]

---

१. नोआरवली में : पृ. ४८
२. आर्द्रा : 'अग्नि परीक्षा' : पृ. ७२
३. वही

सियारामशरणजी भी गांधीजी के समान ही नारी को समाज में प्रतिष्ठा दिलाने के पक्षपाती हैं। नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा की स्थापना के लिये विद्रोह की आवश्यकता नहीं है। यदि वह अपने आत्मीय जनों के साथ विद्रोह का स्वर ऊँचा करती है तो उसका अधिकार ही क्या रहा? गांधीजी का कथन है "मानवजाति के दुध मुँहे बच्चों को पाल पोसकर बड़ा करना उसका विशेष और एकमात्र अधिकार है। वह सार संभाल न करे तो मानव जाति नष्ट हो जाय।"[1] नारी सेवा और त्यागभावना के बलपर ही समाज में गौरव की अधिकारिणी है। विद्रोह करने पर उसका वह गौरवशाली रूप कदापि सुरक्षित नहीं रह सकता। क्षमा ही उसका सबसे बड़ा अस्त्र है जिससे वह इस संग्राम में विजयी हो सकती है। सियारामशरणजी का विश्वास है कि अहिंसा एवं सहनशीलता की प्रत्यक्ष मूर्ति नारी अपने आत्मबल से एक दिन समाज की आँखे अवश्य खोलने में समर्थ होगी। तभी उसका उचित मूल्यांकन हो सकेगा। वे नारी के आदर्श रूप को ही स्वीकार करते हैं जो दैवीगुणों से विभूषित होकर भी मानवी है। गुप्तजी के हृदय में नारी के लिये श्रध्दा भाव है। वे सदैव नारी के सती साध्वी रूप की ही कल्पना करते हैं। नारी कोई मिट्टी की पुतली नहीं है कि सहस्त्रों अन्याय को सहकर भी उसमें प्रतिक्रिया का भाव जाग्रत न हो। उनकी नारियाँ अन्याय का प्रतिकार भी करने में सबल हैं। इन्दु इसी प्रतिकार भावना से प्रेरित होकर स्वस्ति का बचाव करने को उद्यत होती है :

"लूट लिया दस्युओंने स्वस्तिधाम और इस वाटिका में बन्दिनी सी बैठी रहूँ?

अब मैं सहूँगी नहीं यह सब। जाऊँगी अभी तुरंत। बर्बर हैं – उनसे डरूँगी मैं? निकल पडूँगी अभी – मेरे साथ गोपिकाएँ निकल पड़ेगी घर घर से।"[2]

इन पंक्तियों में नारी के सबल रूप का ही अंकन हुआ है।

---

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान १ फरवरी १९५९
२. गोपिका : पृ. २१७

उनकी नारियाँ विशुद्ध भारतीय हैं। वे नारियों को केवल भोग विलास की सामग्री नहीं मानकर कर्मक्षेत्र में उसके अपूर्व सहयोग की अपेक्षा रखते हैं। पातिव्रत्य ही उसके नारीत्व की सफलता है। गुप्तजी ने नारी पुरुष संबंध की व्याख्या भी की है। पुरुष और स्त्री दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। किसी एक के बिना जीवन अपूर्ण रह जाता है। द्रौपदी भीषण परिस्थितियों में पति के सान्निध्य से अपने भाग्य को सराहती है :

> बोली वह – "प्रिय, और अधिक कृष्णा क्या चाहे,
> इन सुमनों सा भूरि भाग्य, वह सतत सराहे।"[1]

अर्जुन भी द्रौपदी जैसी सतीसाध्वी पत्नी को पाकर धन्यभाग्य हो उठता है :

> "और प्रियतमे, कृती आज अर्जुन भी है यह,
> जो यों गिरि-वन पार कर रहा है साध्वी सह।"[2]

उपयुक्त पत्नी के साथ पति कंटकयुक्त मार्ग पर भी आसानी से चल सकता है। उसके लिये जीवन का समस्त संघर्ष सुगम हो जाता है। इस तरह नारी पुरुष की दासी न होकर पूरक शक्ति है। वह पुरुष के जीवन की चिर संगिनी है। उसीके संसर्ग से इस धरती पर स्वर्ग की स्थापना संभव हो सकती है। किंतु पुरुष अपने झूठे दम्भ और अज्ञानतावश नारी को इस अपार शक्ति से अनभिज्ञ हो उसकी उपेक्षा करता आया है जो अनुचित है। सियारामशरणजी नारी की इस अपार शक्ति से अभिभूत हैं। उनके काव्य में चित्रित नारी मनुष्य को पग पग पर मानवता का पाठ पढ़ाती है। 'मृण्मयी' की 'लाभालाभ' कविता में श्रेष्ठी पत्नी कांता जहाँ धनदत्त की रक्षा करती है, वहाँ उसे उचित सलाह भी देती है :

> "सुदृढ़ है ऊपर ही वह धाम,
> नींव में तो सब कच्चा काम।

---

१. नकुल : पृ. ६७
२. वही

झोंपड़े वहाँ अनेक अपुष्ट
दबे हैं हो उच्छिन्न अतुष्ट ।
उन्हीं पर स्थित हो यह सुविशाल
काट सकता है कितना काल ।
गिरा दो उसे स्वयं हो नाथ,
भाग्य अपना है अपने साथ ।"[1]

इन पंक्तियों में श्रेष्ठी की पत्नी में दया और विश्व सुख की आकांक्षा कवि ने की है । एक पूंजीवादी, स्वार्थी और कठोर हृदय सेठजी की सद्भावनामयी, कोमल हृदया पत्नी अपने पूर्व निर्मित महल के नीचे दबे झोंपडों के असंतोष से पीड़ित है । अत: वह अपने पति को सद्मार्ग पर लाने के उद्देश्य से उस महल को गिराने की सलाह देती है ।

सियारामशरणजी की नारी भावना विलासिता से प्रेरित नहीं है । उन्होंने 'अमृत' कविता में स्पष्ट लिखा है :

"ठहर अप्सरे, ठहर किन्तु तू,
रहने दे भ्रू-भंग;
अमरभूमि हित ही रहने दे
यह सब क्रीड़ा-रंग ।"[2]

कवि सत्य और शिव के प्रति आँखे नहीं मींच सकता । नारी में वह शांति प्रदायक शीतलता तथा जनकल्याण की भावना देखता है । अत: आधुनिक कवियों ने नारी को रीतिकालीन ऐंद्रिक नारी भावना से मुक्त कर उसे पूजात्मक स्थान प्रदान किया है ।

सियारामशरणजी की दृष्टि में नारी परिवार का अभिन्न अंग है । प्रत्येक परिवार उसके स्नेह की शीतल छाया में ही पनपता है । घर की सार

---

१. मृण्मयी : 'लाभालाभ' कविता : पृ. १८
२. मृण्मयी : 'अमृत' कविता : पृ. ९७

संभाल, बच्चों का पालन पोषण आदि के लिये नारी ही सबसे अधिक उपयुक्त है। इन सामाजिक जिम्मेदारियों को वहन करनेवाली नारी कैसे हेय हो सकती है? यदि स्त्रियाँ अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ निभाना छोड़ दें तो समाज की ही हानि होगी।

गुप्तजी गांधीजी के समान ही नारी के सती साध्वी रूप को ही अंगीकार करते हैं। नारी का सबसे गौरवशाली एवं आकर्षक रूप है उसका मातृत्व। वह अपनी संतान पर निरंतर प्रेम की वर्षा करती रहती है। अपने उत्तरदायित्व के कारण उसके स्वभाव में गम्भीरता और उदारता आ जाती है। सियारामशरणजीने जननी के इसी वात्सल्यमयी रूप को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। माँ की समस्त भावनाओं का केन्द्र उसकी संतान की सुख सुविधा का ध्यान रखना ही है, वह संतान की खुशी से खुश होती है तथा उसकी तनिक सी पीड़ा को देखकर विचलित हो जाती है। संतान की सुख सुविधा के लिये वह अपना संपूर्ण जीवन भी अर्पित कर देती है। कवि स्वयं माता के इस स्नेहमयी रूप से अवगत है। उन्होंने 'जननी' कविता में माता के इसी वात्सल्यमयी रूप का गुणगान किया है :

"कोई पीड़ा हुई जरा-सी भी जब मुझको,
मुझसे दूना दु:ख हाय! व्यापा तब तुझको।
रात रात भर तुझे दृगों में नींद न आई,
जिस प्रकार हो सका, शीघ्र वह व्यथा मिटाई।"[1]

कवि को प्रभु के पुण्य प्रसाद के रूप में माँ का यह स्नेह प्राप्त हुआ है जिसे पाकर उसका जीवन धन्य हो उठा है। वह माँ की इस महत्ता का वर्णन करने में अपने आपको असमर्थ पाता है। वह प्रत्येक जन्म में ऐसी ही स्नेहमयी माँ की शीतल छाया पाने की आकांक्षा करता है।

---

१. दूर्वा-दल : 'जननी' कविता : पृ. ५०

वस्तुत: सियारामशरणजी नारी के मातृत्व रूप में ही नारीत्व की पराकाष्ठा देखते हैं। इसीलिये उनके काव्य की नारियाँ वात्सल्यभाव से अभिमण्डित हैं। माँ स्वयं अपने पुत्र के लिये कितनी व्यग्र रहती है यह 'उन्मुक्त' काव्य की मृदुला के इन शब्दों में स्पष्ट है। माँ की गोद पुत्र के बिना सूनी है। वह पुत्र के अभाव में अपने नारीत्व को व्यर्थ समझती है :

"वत्स ज्ञानघर, देख यहाँ मेरे आमोदी,
मैं यह हूँ, यह शून्य पड़ी है मेरी गोदी।
आ तू, आ तू, - अरे नहीं सुनता तू मेरी,
भूल गया क्या मुझे, अरे मैं मैया तेरी।
पय की पीड़ा भार भरे कितना यह छाती;
सुन सुन, मेरी गिरा नहीं क्या तुझ तक जाती ?"[१]

वह पुत्र को ही अपनी अमूल्य निधि मानती है। अत: पुत्र की मृत्यु के पश्चात् भी वह उसका शव पाने को विचलित हो उठती है। वह कर्मकारों से उस मलबे के नीचे से पुत्र की लाश ढूंढ निकालने का अनुरोध करती है :

" देखो वह नन्हीं देह, जैसे बने उसको
बाहर निकालना है। बाहर निकालोगे
उसको अवश्य तुम। ज्योंही वह निकले
मुझको दिखाना उसे।
मुझको दिखाओगे ? अमूल्य वह धन है।
टूटकर छिन्न-भिन्न हो गया, इससे
फेंक देने योग्य नहीं; मेरी मणि वह है।"[२]

सियारामशरणजी ने मृदुला को स्नेहमयी माँ के अतिरिक्त महान् देशप्रेमिका तथा आदर्श पत्नी के रूप में भी चित्रित किया है। उसका सबसे

---

१. उन्मुक्त : पृ. १३८
२. वही : पृ. ११५

उत्कट रूप देशप्रेम में व्यंजित हुआ है। युध्दकाल में उसका प्रेरणादायक रूप किसी भी नारी के लिये आदर्श है। देश की रक्षा के लिये वह अपना तन, मन, धन सभी कुछ त्याग देती है। वह स्वदेश रक्षा को सर्वोपरि कर्तव्य मानती है। अत: पुष्पदंत से भस्मक यंत्र तैयार कराने का आदेश पाकर वह शोक और ह्रदय की मातृत्व पीड़ा को विस्मृत कर जयंत के पास जाती है और उससे भस्मक यंत्र तैयार कराती है। रण में कुसुम व्दीप की विजय के लिये घर घर जाकर दान माँगती है जिससे एक विशाल वायुयान तैयार करवाकर कुसुमव्दीप की सेना को दिया जा सके। इन सब कार्यों में उसे अथक परिश्रम करना पड़ता है। अपने उत्कट देशप्रेम के कारण ही वह देशद्रोहियों को सबसे बड़ा शत्रु समझती है। देश की यह अनन्य सेविका मृदुला आदर्श पत्नी भी है। उसका ह्रदय पति के प्रेम से ओतप्रोत है। युध्द क्षेत्र से पुष्पदंत का भस्मक किरण के संबंध में पत्र पाकर उसमें पति की कुशलता के समाचार न मिलने पर वह व्यथित हो उठती है। तथा अकुलाहट से भरकर भगवान से अपने सुहाग की भीख माँगती है। वह पति के वियोग के समान पुत्र वियोग का दारुण दु:ख भी सह लेती है तथा ह्रदय को कठोर बनाकर अपने उत्तरदायित्व का पालन करती है। विश्रांति के क्षणों में उसका वात्सल्य भाव पुन: जागृत हो उठता है, उसकी मातृत्व की व्यथा फिर से सुलग उठती है :

"लज्जा मुझको नहीं, यहाँ यदि हूँ मैं नारी;
आकुल मुझ में यहाँ हो उठी है महतारी।
इन नयनों का नीर वहाँ पर किसी निठुर ने
छीन लिया था; यहाँ तृषातुर तापित उर ने
फिर से उसको प्राप्त कर लिया है। तुम जाओ,
मेरे पथ में यहाँ न संकट सी यों छाओ।"[1]

---

१. उन्मुक्त : पृ. १३७

मातृत्व के उस नीर को मृदुला के तापित उर व्दारा फिर से प्राप्त करने पर मृदुला स्वप्नावस्था में किसी बालदेश में पहुँच कर अपने पुत्र ज्ञानधर को पाना चाहती है। मृदुला के इस वात्सल्य स्नेह और राष्ट्रसेवा के अंतर्व्दन्व्द को कवि ने मार्मिकता के साथ अंकित किया है। उसका राष्ट्र कर्तव्य उसके मातृत्व पर हावी हो जाता है। वस्तुत: मृदुला के चरित्र के माध्यम से कवि ने उन आदर्श राष्ट्र सेविकाओं की ओर संकेत किया है जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में योध्दाओं के रूप में अपने पतियों को हँसते हँसते विदा दी है। अपने पुत्रों को राष्ट्र की बलिवेदी पर न्यौछावर किया है। जिन्होंने स्वेच्छा से सुख साधनों को त्याग कर राष्ट्र के मुक्ति आंदोलन में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है। वह देश की पराजय से हताश नहीं होता, वरन् भविष्य के प्रति आस्थावान है। अत: सर्वमंगल का संदेश देकर वह पुन: विदा करना चाहती है। इस प्रकार 'उन्मुक्त' में मृदुला के आदर्श नारी का ही चित्रण हुआ है। वह पुरूष के पशुत्व पर भी क्षोभ प्रकट करती है। निम्न पंक्तियों में पुरूष की पाशविकता का शिकार बनी हुई हेमा के प्रति सहानुभूति प्रकट हुई है :

"सुनो, हुआ हेमा का फिर क्या;
सद्योधिक उस मांसपिण्ड का, उष्ण रुधिर का
लोभी नरपशु उसे जिलाये रहा रात भर
सैन्य शिविर में। पढ़ो, पढ़ सको यदि धीरज धर
तो पढ़लो यह पत्र।"[1]

कवि अबला नारी के प्रति किये जानेवाले बर्बरता पूर्ण व्यवहार को देखकर व्यथित हो उठता है। उसे मानवता के पतन पर घृणा होती है। कवि का यही तिरस्कार भाव निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है :

---

१. उन्मुक्त : पृ. ५०

"धिक् धिक्
कुत्सित घृण्य जघन्य अरे ओ उच्च सांस्कृतिक,
तुम ऐसे हो।"[1]

कवि पुरुष के इस कुकृत्य को निंदनीय मानता है। इस प्रकार 'उन्मुक्त' में नारी के प्रति सहानुभूति प्रदर्शन कर कवि ने गांधीदर्शन की ही पुष्टि की है।

'बापू' काव्य में भी कवि ने नारी के प्रति सम्मान का भाव ही प्रकट किया है। उन्होंने गांधीजी जैसे लाल को जन्मदेनेवाली माता की तुलना उस सीपी से की है जिसने महात्मा गांधी के सदृश योगी को जन्म दिया :

"भूतल की शुक्ति यह हलकी
एक बड़ी बूँद किसी पुण्य-स्वाति जल की
दुर्लभ सुयोग जन्य।
प्राप्त कर तुममें हुई है धन्य धन्य धन्य।"[2]

नारी जीवन की सबसे बड़ी महत्ता उसकी त्यागवृत्ति ही है। वह मानवता की सेवा में ही अपना जीवन अर्पण कर देती है। सियारामशरणजी ने अपने काव्य में नारी के त्यागमय रूप का ही चित्रण किया है।

'अनाथ' में सहनशील भारतीय नारी का त्यागमय रूप ही अंकित हुआ है। यमुना एक ऐसी स्नेहमयी अबला नारी है जो अपने पुत्र की रुग्णता और छोटे बच्चे को भूख से तड़पते हुए देखकर विव्हल होती है, किंतु चाहकर भी अपने पुत्र के लिये मुट्ठीभर अन्न तथा दवाई नहीं जुटा पाती। वह अश्रुपात करते हुए अपने भाग्य को कोसती है। कवि का संवेदनशील हृदय

---

१. उन्मुक्त : पृ. ४९
२. बापू : पृ. ३०

उस अबला को रुदन करते हुए देख व्यथित हो जाता है। वह उसके रुदन का कारण जानना चाहता है :

"यह अबला किसलिये यहाँ कर रही रुदन है,
किस विपत्ति से व्यथित आज यों इसका मन है।
अविरल दृग जल बहा रही क्यों यह बेचारी ?
अति अधीर हो रही कौन से दुःख की मारी ?"[1]

निराशा में डूबी हुई यह अबला नारी भाग्य के हाथों इतनी विवश हो जाती है कि उस अवस्था में ईश्वर का ही एकमात्र सहारा उसे नजर आता है :

" सहे हैं कितने दुःख भगवंत–
न होगा क्या अब इनका अंत ?
सहूँ अब और किस तरह क्लेश
बताओ तो मुझको विश्वेस।"[2]

एक ओर उसका बच्चा भूखा ही सो गया है, दूसरी ओर मुरलीधर बेहाल हो रहा है, ऊपर से दुर्भाग्य की बात यह है कि पति को भी बेगार में पकड़ लिया जाता है। इस स्थिति में उसे रक्षा का कोई उपाय नहीं सूझता। उसका अपना कोई ऐसा सहृदय नहीं जो उसे सांत्वना दे सके। उस असहाय अबला नारी पर तभी एक पुरुष का पाशविक अत्याचार होते देखकर कवि का मन क्षुब्ध हो उठता है। काबुली पठान अपना ऋण मांगने मोहन के घर जाता है और यह जानकर भी कि मोहन बेगार में पकड़ लिया गया है और यमुना ऋण चुकाने की स्थिति में नहीं, वह उस पर जोर जबर्दस्ती करता है :

"मान सकते हैं हम किस भाँति ?
बने बेगारी या मर जाय

---

१. अनाथ : पृ. ४
२. वही : पृ. २४

हमारे दाम अदा कर जाय ।

x x x x

अभी चलकर कोठी पर काम;
हमारे चुकें न जब तक दाम ।"[१]

यहाँ कवि ने आदमी की क्रूरता का वर्णन कर अबला नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट की है ।

'आर्द्रा' की 'प्रणयोन्मुखी' कविता में भी कवि ने नारी की उदारता एवं महानता को ही प्रतिपादित किया है । यह कविता पत्नी की ओर से अंतिम वक्तव्य के रूप में लिखी गई है । वह पत्नी बीमारी के कारण कृशकाय हो गई है । वह इतनी उदार हृदया है कि वह चाहती है उसके चले जाने के बाद पति का घर सूना न रहे और दूसरा कोई उसकी परिचर्या के लिये आ जाय । कविता के अंत में वह विदा के क्षणों में केवल अपने प्रिय की चरण रज लेना चाहती है जो उसके आदर्श पत्नी प्रेम को ही व्यक्त करती है । इसमें कवि का विद्रोह अंतस्थ रहकर ही प्रकट हुआ है । उसने समाज की नारी संबंधी जर्जर और रूढ़ मान्यताओं पर चोटें की हैं किंतु खुलकर नहीं ।

'आत्मोत्सर्ग' में भी कवि ने अबला नारियों के प्रति किये जानेवाले अत्याचार की निंदा की है । उनकी दृष्टि में अबला नारियों को दण्डित करना जघन्य अपराध है :

"आततायियों को मारो तुम,
इसमें उतना दोष नहीं;
पर इन अबलाओं पर भी क्या
समुचित है यह रोष कहीं ?"[२]

---

१. अनाथ : पृ. २६
२. आत्मोत्सर्ग : पृ. ४३

उत्तेजित भीड़ जब यह कहकर नारी की भर्त्सना करती है कि "यही नारियाँ इन हत्यारों एवं अत्याचारियों को जन्म देती हैं अत: वे दोषी हैं" – तब कवि को नारी की भर्त्सना पर दु:ख होता है। उनकी दृष्टि में माँ का रूप अत्यंत गरिमामयी है, अत: उन अत्याचारियों को प्रताड़ित करते हुए वे लिखते हैं :

"तुम भी इसीलिये होगे क्या
अत्याचारी, हत्यारे ?
नहीं कदापि बुरे हो सकते
किसी जाति के जन सारे।"[1]

'नोआखली में' भी कवि ने अपहृत अमला के प्रति सहानुभूति की भावना प्रकट की है। वे उसे एक कुल की बेटी न मानकर अखिल कुलों की बेटी मानते हैं। इसीलिये नोआखली की विषम स्थिति के चक्कर में फँसी हुई अमला के उध्दार का आह्वान करते हुए वे लिखते हैं :

" नहीं एक ही कुल की बस वह,
निखिल कुलों की बेटी है,
उसे उबार बचा लाना है,
करके तिमिर-महोदधि पार।"[2]

स्पष्ट है कि कवि के मन में अबला नारी के प्रति करुणा है और वह नारी के उध्दार को अपना परम कर्तव्य समझता है। उसकी दृष्टि में वास्तव में अमला अपहृत नहीं हुई है बल्कि इस दुर्घटना से मानवता ही दीन एवं मलिन हो गई है।

'अमृतपुत्र' की सामरी भी यद्यपि तुच्छ एवं अधम नारी है, तथापि ईसु से साक्षात्कार के पश्चात् वह भी 'सर्वेभवन्तु सुखिन:' का संदेश ही देती है :

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. ४३
२. नोआखली में : पृ. ४७

" तुच्छ नारी मैं महामूर्खा अधम,
देखते ही समझा जब उनको गई,
कठिनता क्या तब समझने में तुम्हें ।
तुम उन्हें सत्कार दोगे अतिथि का ।
प्रार्थना मेरी, रहो सुख से सदा,
हों तुम्हारे साथ ही हम सब सुखी ।"[1]

सियारामशरणजी की नारियों में उदारता के साथ साथ सहनशीलता का भाव भी है । सुनंदा इसी बात को सोचकर दु:खी है कि राजकुमार उसे बताकर क्यों नहीं गए । निम्न पंक्तियों में कवि ने सुनंदा के मनोभावों को व्यक्त कर नारी की इसी सहिष्णुता की ओर संकेत किया है :

"सह न सकूंगी समझा कैसे,
परखा होता कहकर,
हम न सहें तो कौन सहेगा
वज्र धरा पर रह कर ।
स्वयं बिठाती रथ पर उनको
दिया नहीं यह अवसर,
मैं वह नहीं बिलगती हैं जो
गल गल जल जल झर झर ।"[2]

पृथ्वी लोक की ये नारियाँ इतनी महान हैं कि वे अपने प्रियतम से उसी उच्च स्तर पर मिलने को उत्सुक है :

"खर्व नहीं हम, खर्व नहीं तुम
आओ प्रियतम आओ,
ऊँचा स्थान तुम्हारा वह जो
हमें वहीं तुम पाओ ।"[3]

---

१. अमृतपुत्र : पृ. ३६
२. सुनंदा : पृ. ४७
३. वही : पृ. १०४

नारी के सहयोग के बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण होता है। वह सुख में महल निवासिनी बनकर साथ देती है तो वन, गिरि, प्रांत, बीहड़, निर्जन स्थान में भी सहचरी के रूप में पुरुष को दु:ख में हाथ बंटाती है। नारी जीवन की प्रतिष्ठा तथा महत्त्व आत्मसमर्पण में ही है। पुरुष के प्रति नारी का आत्मसमर्पण उसका प्राकृत धर्म है। इस समर्पण में ही उसकी शोभा है। यह समर्पण ही पुरुष जीवन की शून्यता की पूर्ति करता है। 'नकुल' में पार्वती के मुख से सीता का राम के प्रति अटूट प्रेम और समर्पण भाव वर्णित कराकर कवि ने मानव के महत्त्व की प्रतिष्ठा के साथ साथ समाज में नारी के महत्त्वपूर्ण स्थान की भी घोषणा की है। सीता राम के चरणों में कंटंकित लता को समर्पित कर अपने को सौभाग्यशालिनी समझती है :

" सीताने सप्रेम तभी वह पुष्प चयन कर,
किया समर्पित समाराध्य के पद् पद्मों पर,
'जैसी भी हो देव'- अधिक इससे क्या चाहे,
सीता अपना भाग्य इसी-का सतत सराहे।"[१]

अर्जुन सच्चा कर्मयोगी है। उसकी दृष्टि में दाम्पत्य जीवन की सार्थकता यही है कि इसी भूमि पर ही सुख दु:ख के क्षण बिताये जायं। इसीमें पुरुष नारी की गरिमा बढ़ती है और वे अपने प्राकृत धर्म का पालन करते हैं :

"विधि ने विरचे नहीं सिंह-सिंही उड़ने को।
उनके गौरव इसी मृण्मयी से जुड़ने को।"[२]

स्पष्ट है कि कवि ने 'नकुल' में द्रौपदी के चरित्र द्वारा नारी के आदर्श को प्रतिष्ठित किया है। द्रौपदी सीता के समान पति के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण में ही सुख का अनुभव करती है। वह स्त्री की युगीन मनोव्यथा

---

१. नकुल : पृ. ६६
२. वही : पृ. ६९

से भी परिचित है। अबला नारी के प्रति द्रौपदी की करुणा निम्न पंक्तियों में व्यक्त हुई है :

> "चाहो देखो वहीं केश-कर्षित कृष्णाएँ,
> तब भी नहीं प्रशांत द्विपद-पशु की तृष्णाएँ।"[1]

द्रौपदी अन्याय एवं अनीति से पीड़ित इस जगत की समस्त अबला नारियों की व्यथा को अपने आप में अनुभव करती है। वह "स्व" के संकुचित दायरे से निकल कर संपूर्ण धरा की अपनी बन गई है।

'गोपिका' में भी नारी के मर्यादित प्रेम का अंकन हुआ है। इन गोपिकाओं में अपूर्व त्याग एवं समर्पण की भावना है। वे लोक कल्याण की मंगल कामना से विभूषित हैं। यशोधरा की भाँति इन्दु के मन को भी यह बात खटकती है कि श्याम उसे बताकर क्यों नहीं गए -

> " मोदू से कहा, 'कह देना जा रहा हूँ, फिर कभी आऊँगा।'
> चले गए! पहले कहा क्यों नहीं। डर था क्या रोक कर बाँध लेती"[2]

मध्य कालीन गोपियों की भाँति सोलह श्रृंगार करके प्रियतम को रिझाना ही उनकी गोपिकाओं का उद्देश्य नहीं है। उनके प्रेम में आत्मविश्वास है। विरहावस्था के कारण प्रेम का रूप और भी अधिक गम्भीर और गरिमामय हो गया है। सियारामशरणजी ने नारी को अबला के रूप में ही चित्रित नहीं किया। उनकी दृष्टि में नारी अपूर्व शक्ति संपन्न है और समय पर वह अपनी निर्भयता और शक्ति का परिचय देती है। 'गोपिका' में कवि ने इन्दु के निर्भय रूप की झाँकी प्रस्तुत की है। इन्दु जब स्वस्तिधाम के लूटे जाने का समाचार सुनती है तब वह वृंदवाटिका में बंदिनी न बनी रहकर उस अन्याय का प्रतिकार करने के लिये उद्यत होती है। वह वृंदवाटिका को संकुचित दायरे में ही बँधा हुआ नहीं पाती, बल्कि उसे स्वस्तिधाम में भी वाटिका का ही व्याकुल रूप दिखाई देता है। अत: स्वस्तिधाम की रक्षा के निमित्त वह

---

१. नकुल : पृ. ६९
२. गोपिका : पृ. ७३

अकेले ही दुर्जय और क्रूर जैसे दस्युओं का दृढ़तापूर्वक सामना करने को तत्पर हो जाती है। यहाँ नारी के शक्तिशाली रूप का ही चित्रण कवि ने किया है। जिस तरह स्वतंत्रता संग्राम में नारियों ने सक्रिय भाग लिया था, उसी प्रकार इन्दु भी अन्याय के प्रतिकार व अपनी वाटिका तथा स्वस्तिधाम की सुरक्षा के निमित्त अपने प्राणों की परवाह किये बिना दस्युओं का सामना करने निकल पड़ती है। अंत में इन्दु भी निम्बा और मंजू के समान भद्र को ही अपना देवर्षि मानकर जन जन के श्रेष्ठ प्रतिभू स्वरूप दक्षिणा में श्याम मंजरी के साथ वृंदवाटिका समेत अपने मुकुंद को भी भद्र को ही समर्पित कर देती है। सत्यभामा के समान उसकी भी यही भावना है - 'मुकुंद उसके थे, वे अब सबके हो गये, जन जन के संपूर्ण धरा के होकर ही वे आज के दिवस से मेरे बनें।' इस तरह समस्त गोपिकाएँ रागव्देष से रहित हो जन जन के हित की कामना कर श्याम को लोक कल्याण के लिये समर्पित कर देती हैं। यहाँ आकर कवि ने गोपिकाओं के प्रेम को अत्यंत उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित कर दिया है, जहाँ उनके अहंकार का पूर्ण विगलन हो जाता है और वे लोक-कल्याण में ही अपना हित अंतर्हित पाती हैं।

इस प्रकार नारियों के प्रति कवि का दृष्टिकोण अत्यंत स्वस्थ रहा है। उनके काव्य में वर्णित नारियों ने आश्रम खोलकर समाज सुधार का बीड़ा नहीं उठाया और न कातर होकर अपने प्राण मृत्यु को अर्पित किये, वरन् मर्यादा और गौरव को साथ लिये पुरानी रूढ़ियों से संघर्ष करते हुए वे अपने जीवन पथ पर अग्रसर होती रहीं। संक्षेप में, सियारामशरणजी ने नारी को एक शाश्वत माता के रूप में चित्रित कर उसको प्रेम, त्याग, करुणा, सेवाशक्ति, धैर्य और क्षमता आदि महत्त्वपूर्ण गुणों से विभूषित कर उसे समाज में उच्चपद पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया।

गांधीजीने स्त्रियों की दु:खपूर्ण स्थिति को सुधारने के लिये वेश्या-वृत्ति, सती प्रथा, परदा प्रथा, बाल विवाह और दहेज प्रथा आदि का विरोध किया और बाल विवाह से उत्पन्न विधवा विवाह समस्या को सुधारने के लिये विधवा विवाह का समर्थन भी किया। उनके विचारानुसार

"हिन्दू विधवा त्याग और पवित्रता की मूर्ति है।.... पवित्र विधवा को समाज का भूषण समझकर उसके मान और प्रतिष्ठा की रक्षा करनी चाहिए। किंतु स्त्री जाति के लिये प्रतिपोषित-प्रचारित तुच्छ भाव ने विधवा के साथ अन्याय करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। इससे हिन्दू विधवा की स्थिति अछूतों के समान ही दयाजनक हो गई है।"[१] हमारे समाज में विधवा को अभागी और अशुभ समझा जाता है। उसे तरह तरह से कोसा जाता है और उसका जीना दूभर कर दिया जाता है। गांधीजी को विधवा नारी के प्रति विशेष सहानुभूति थी। अत: उन्होंने नारी उध्दार के कार्यक्रम के अंतर्गत विधवा समस्या पर विचार करते हुए विधवा विवाह का समर्थन किया। सियारामशरणजी ने भी इस सामाजिक समस्या को लेकर अनेक करुण चित्र अंकित किये हैं और 'चोर' तथा 'खादी की चादर' शीर्षक कविताओं में विधवा नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट की है।

हमारे समाज में विधवाओं को अभिशाप समझा जाता है। समाज न तो उन्हें पुनर्विवाह की आज्ञा देता है और न सरलता पूर्वक उनको जीवन ही व्यतीत करने देता है। उसके प्रत्येक आचरण में दोष खोजना, तरह तरह के ताने कसना, भली बुरी बातों व्दारा उन्हें कोसना साधारण सी बात हैं। 'खादी की चादर' में कवि ने नारी वैधव्य की इसी समस्या की ओर संकेत किया है तथा विधवा नारी के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है। चम्पा एक ऐसी अभागिन स्त्री है जिसका पति असमय ही मृत्यु का शिकार हो गया है। पति की मृत्यु के साथ उस अबला नारी का जीवन अंधकारमय हो गया। पति की मृत्यु के साथ उसकी समस्त भावनाएँ भी मर गई। किंतु वह अपनी बच्ची के लिये अपमान का घूँट पीकर भी तिल तिल कर जलते हुए जी रही थी। सब लोग उसे अशुभ और दु:स्सह कहकर उससे घृणा करते थे और उसकी बच्ची तक को कोसते रहते थे। निम्न पंक्तियों में विधवा चम्पा के उपेक्षित स्वरूप का ही चित्रांकन हुआ है :

---

१. गांधी विचार दोहन : किशोरलाल मशरूवाला : पृ.४९

"सबके लिये अशुभ सी दुस्सह विधि का शाप हुई घरमें,
मरणेच्छा ही हुई शुभेच्छा उसके लिये भुवन भर में।
रात रात भर रोती रहती, तनिक विराम न लेती थी;
तमसा के उपरांत उषा भी उसे प्रकाश न देती थी।"[1]

घर के लोग उसे राक्षसी कहकर कोसते रहते थे। इस प्रकार उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई थी :

"घर के लोग कोसते जब तब
उसे राक्षसी कह कह कर;
उसकी वह छोटी बच्ची भी
खलती सब को रह रह कर।
उसको माँ से उसे तनिक भी
हीन नहीं वे बतलाते;
अपना बाप खा गई, तब तो
उसे और मोटी पाते।"[2]

एक दिन इस विधवा से छुटकारा पाने का उपाय उसके कुटुम्बी जनों ने खोज निकाला। वे उसे बलपूर्वक परलोक सुधारने का बहाना बनाकर उसे तीर्थयात्रा पर ले गये। अत्यधिक भीड़ भाड़ के कारण चम्पा अपने परिवारजनों से बिछड़ गई। इस प्रकार उस अबला नारी की आशा का अंतिम तार भी टूट गया। वह अपनी बच्ची को गोद में उठाये उनकी तलाश में दिनभर इधर उधर भटकती रही। किंतु दुर्भाग्य से वह घर के लोगों को खोजने में असमर्थ रही। उसके पास कुछ पैसे थे जिससे उसने अपनी बेटी को थोडा कुछ खिला दिया। और स्वयं गंगाघाट का पानी पीकर ही संतुष्ट हुई। वह अपने दुर्भाग्य पर विचार कर रही थी :

---

१. आर्द्रा : 'खादी की चादर' : पृ. १०४
२. वही : पृ. १०४-१०५

"मुझ अभागिनी का सहाय क्या
कहीं नहीं होगा कोई ?
वैरी हुआ विश्वभर मेरा,
हाय ! कहाँ अब जाऊँ मैं ?
मुझ तक ही मेरी सीमा है,
हाथ कहाँ फैलाऊँ मैं ?"[1]

इस निस्सहाय अवस्था में वह मृत्यु की कामना करती है। वह स्वयं तो समाज द्वारा प्रताड़ित एवं पीड़ित है ही किंतु जब उसकी अबोध बच्ची को कोसा जाता है, यातनाएँ दी जाती हैं तब उसे अपार वेदना होती है। समाज के अत्याचार एवं बेटी की दुर्दशा को देखकर उसका मन शोषित हो उठता है और उसकी आस्था ईश्वर पर से भी डिग जाती है :

"विश्वनाथ, हा विश्वनाथ ! तुम
हो यथार्थ ही पत्थर के ?
सम्मुख ही तलफाओगे क्या
मुझे निस्सहाया करके ?
क्या पिट गया दिवाला, जिससे
तूने भी मुँह है फेरा;
अरी अन्नपूर्णा माता, क्या
रहा नाम भर ही तेरा।"[2]

वह अबला अपने दुर्भाग्य को कोस रही थी तभी धार्मिक कार्य में निरत एक पण्डितजी ने चम्पा की अवस्था पर सहानुभूति प्रकट कर उसे अपने घर में आश्रय दिया। किंतु फिर भी दुर्भाग्य ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। उसकी बच्ची का शरीर ताप तप्त हो उठा। चम्पा ने बेटी को दूध पिलाने के आशय से कटोरी उसके मुँह की ओर बढ़ायी, किंतु उसने 'मत मारो' कहकर

---

१. आर्द्रा : 'खादी की चादर' : पृ. १०८
२. वही : पृ. १०९

उसका हाथ झटक दिया। ठोकर लगने से दूध फैल गया उसकी वह बच्ची भूखे प्यासे ही परलोक सिधार गई। चम्पा बेटी की इस अप्रत्याशित मृत्यु का झटका नहीं झेल पाई। उसका हृदय विदीर्ण हो गया और वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। पण्डितजीने उसे सांत्वना देकर आश्वस्त करना चाहा, किंतु प्रतिपल उसकी उद्विग्नता बढ़ती ही गई। उसी उद्विग्न अवस्थामें वह चिल्ला उठी :

"अरी ओ बेटी,
मुझको छोड़ चली तू भी।
पहले ही सब तोड़ चुके थे
नाता तोड़ चली तू भी।
क्यों न जनमते ही री! मैं ने
तेरा गला घोंट डाला;
तुझ जैसे भी महाशत्रु को
दूध पिलाकर क्यों पाला ?"[1]

जब लोग उसके शव को ले जाने लगे तब वह उससे कसकर लिपट गई। अंतत: लोगों ने बड़ी मुश्किल से उसे विलग किया। पण्डितजी ने उससे अन्नजल ग्रहण करने का आग्रह किया, किंतु उनके द्वारा दिये जानेवाले आश्वासन, उपदेश और सांत्वना का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसका हृदय बेटी की अप्रत्याशित मृत्यु से भग्न हो गया था। किंतु उसे इस बात का संतोष भी था कि मर कर उसकी बेटी सभी कष्टों से छूट गई। किंतु बेटी के भूखे होने का अहसास उसे प्रतिपल सालता रहा। सहसा उसे कोने में पड़ा एक चरखा दिखाई दिया। वह चरखे पर सूत कातने लगी। वह अपनी सुध्बुध बिसराये दिन रात निरंतर सूत कातती रही। एक दिन वह सारा सूत इकट्ठा कर पंडितजी के पास गई और उस सूत के एवज में दो आने पैसे महेनताना मांगने लगी। पण्डितजी ने उसे अधिक दाम देने का प्रयत्न किया, किंतु अतिरिक्त पैसे वहीं छोडकर वह झट से भाग खड़ी हुई। उन पैसों से उसने सकोरा भरकर

---

१. आर्द्रा : 'खादी की चादर': पृ. ११४

दूध खरीदा और गंगाघाट पहुँच गई। वह अपनी बेटी को दूध पिलाना चाहती थी अत: उसने वह दूध गंगा में प्रवाहित कर दिया। उसके बाद चम्पा कहाँ चली गई किसी को पता नहीं चल पाया। इस प्रकार प्रस्तुत कवितामें समाज व्दारा अपमानित, पीड़ित एवं प्रताड़ित अभागी विधवा नारी के प्रति कवि की सहानुभूति ही प्रकट हुई है। इसमें नारी के त्यागमय मातृत्व के भी दर्शन होते हैं। हिन्दू विधवा को चरखा कातते दिखाकर कवि ने समस्या का गांधीवादी समाधान ही प्रस्तुत किया है।

'चोर' कविता में भी दयावती नाम की विधवा नौकरानी की दुर्दशा की करुण कथा अंकित की गई है। इसमें एक स्थान पर कवि ने विधवा विवाह की प्रथा की ओर भी संकेत किया है। कविता की कथा इस प्रकार है : दयावती नाम की एक विधवा नारी को एक श्रीमंत व्यक्ति दया करके नौकरी पर रख लेता है। उसके मनमें उस विधवा नारी के प्रति सहानुभूति है। प्रारंभ में घर के अन्य नौकर भी उसके प्रति सहानुभूति रखते थे किंतु बाद में उन्होंने सोचा की दयावती की सादगी एक नाटक है, वास्तव में वह उनको बुरा दिखाने के लिये व अपनी वाहवाही के लिये सादगी का ढोंग रचती है। अपने इसी विचार के आधार पर वे उसे अपनी जाति से निकाल देते हैं। हालाँकि घर की मालकिन को उससे कोई शिकायत नहीं है, फिर भी वह उससे पूर्ण संतुष्ट भी नहीं है। मालिक का दयावती के प्रति अत्यधिक सहानुभूति प्रदर्शित करना उसे खलता है। वह उसकी उपेक्षा करती है। सबके व्दारा उपेक्षित वह विधवा नारी सब कुछ मौन रह कर सहती है। मालिक को पत्नी और घरके नौकरों का रवैया पसंद नहीं है। वह पत्नी को समझाता है कि यदि दयावती के रहने से उसे कष्ट पहुँचता है तो वह उसे काम पर से हटा दे। उस समय पत्नी अपने पति से उपहास करते हुए उस पर व्यंग्य करती है :

"मालिक ही घरके
उस पै प्रसन्न हैं विशेषतर
तब फिर क्रूर दृष्टि से ही उसे देखकर

उसका बिगाड़ क्या सकेगा कौन ?"[१]

उसे अपने पति के आचरण पर संदेह है। इसी संदेह के कारण वह पति से रुष्ट है। निम्न पंक्तियों में वह पति पर रोष प्रकट करते हुए विधवा विवाह प्रथा की ओर संकेत करती है :

"चल ही गया है अब खूब विधवा-विवाह;
किंतु नहीं तुम हो विधुर आह!"[२]

उसके व्दारा इस प्रकार का घिनौना उपहास किये जाने पर उसका पति तिलमिला उठता है। वह पत्नी को समझाता है कि उसे आपत्तिग्रस्त किसी विधवा नारी का इस प्रकार मखौल नहीं उड़ाना चाहिए। हमारे समाज की यही विडम्बना है कि हम विधवा को अशुभ समझकर उसकी उपेक्षा करते हैं। यदि कोई नौजवान युवक भावनावश उसकी मदद भी करना चाहता है तो हम उसकी भावना की कद्र न कर उसके चरित्र के संबंध में संदेह करने लगते हैं तथा उस पर छींटाकशी करने लगते हैं। यहाँ कवि ने समाज की इसी तंगदिल मनोवृत्ति की ओर संकेत किया है।

वह विधवा अत्यंत शुष्क जीवन व्यतीत कर रही है। समाज के व्यंग्य, उपहास तथा प्रताड़ना को सहकर भी वह इस तरह मौन रहती है मानो उसने परिस्थिति से पूर्णतया समझौता कर लिया हो :

"दिन के प्रदीप की शिखा-समान,
आग में जला के प्राण,
पाती नहीं कण भी प्रकाश का;
पाती उपहास, व्यंग्य मात्र आसपास का।"[३]

यह विधवा नारी त्याग और सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति है जो समाज

---

१. आर्द्रा : 'चोर' कविता : पृ. ७७
२. वही
३. वही : पृ. १९

व्दारा कदम कदम पर ठुकराये जाने पर भी धैर्यपूर्वक अपने जीवन का मार्ग तय कर रही है। किंतु विधाता को मानो यह भी मंजूर नहीं। एक दिन उसकी मालकिन उस पर गिन्नी की चोरी का इलजाम लगाती है। मालिक जो कभी उससे सहानुभूति रखता था, वह उसे हिकारत भरी दृष्टि से देखने लगता है। वह उसे कलंकिनी समझकर अपमानित करता है। वह विधवा बिना सफाई पेश किये अपमान को चुपचाप सहकर वहाँ से चली जाती है। मालिक व्दारा अपमानित किये जाने पर घर के सभी नौकर खुश हो जाते हैं। किंतु न जाने क्यों इस घटना के पश्चात मालिक का मन विषाद से भर उठता है। एक दिन दोपहर के समय जब मालिक की पत्नी धोबी को देने के लिये कपड़े छांटती है, तब एक कपड़े की जेब से वही गिन्नी निकलकर जमीन पर गिर पड़ती है। खोई हुई गिन्नी वापस मिल जानेपर उसका मन विषाद से भर जाता है। उसे अपनी गल्ती का अहसास होता है। वह तुरंत एक आदमी को भेजकर दयावती को बुलाता है ताकि वह दयावती के सम्मुख वस्तुस्थिति को स्पष्ट कर उससे माफी मांग सके। किंतु दुर्भाग्य से कलंक लगने के पश्चात दयावती अपना घर छोड़कर कहीं चली जाती है। मालिक को यह बात रह रह कर कचोटती रहती है कि वह दयावती के सम्मुख यह नहीं बता सका कि वह [दयावती], पूर्णतया निर्दोष है।

इस प्रकार प्रस्तुत कविता में कवि ने समाज के व्दारा उपेक्षित, अपमानित एवं पीड़ित विधवा नारी का करुण चित्र अंकित कर उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है। विधवा विवाह की चर्चा व्दारा प्रकारांतर से विधवा विवाह का समर्थन भी किया गया है। समाज में निम्न वर्ग के लोगों के प्रति जो तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया जाता है उसकी भी निंदा की है।

नारी उध्दार के कार्यक्रम के अंतर्गत गांधीजी वेश्याओं के उध्दार पर भी जोर देते थे। वे यह मानते थे कि वेश्याओं से दूर रहना हमारा धर्म नहीं है। वेश्याओं को सम्मानित कर उन्हें संयम की शिक्षा देकर सुधरने का अवसर दिया जाना चाहिए। वेश्यावृत्ति की वृध्दि का मूल दोषी वे पुरुषों को ही मानते हैं। उनकी दृष्टि में वेश्याओं से घृणा करना उनकी संख्या में

वृध्दि करना समाज के साथ दुराचार है। उनकी संख्या को घटाकर ही समाज का कल्याण हो सकता है। गांधीदर्शन से प्रभावित होने के कारण सियारामशरणजी भी वेश्या के प्रति सहानुभूति रखते हैं। 'गोपिका' में निम्बा नर्तकी के प्रति कवि की करुणा इसका प्रमाण है। आमोद नाचना बुरा नहीं मानता। उसमें निम्बा के प्रति आदर की भावना है। निम्बा यदि नर्तकी है तो वह उसके नाचने में कोई बुराई नहीं समझता और न ही उसे दोषी समझता है।

"नारी वह कोई हो, जोजो के साथ यदि आई नहीं तो वह स्वतंत्र थी। दुःख नहीं, उसके लिये तो मुझे आदर है। वह नाचती ही तो बुराई क्या संभव है वह नर्तकी ही हो।"[1]

आमोद के इस कथन में निम्बा के प्रति आदर भाव ही प्रकट हुआ है।

इस प्रकार गुप्तजी ने अपने करुणा मूलक काव्यों में नारी का करुण चित्र अंकित कर हिंदू नारी जीवन की समस्याओं की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया है तथा इन समस्याओं के समाधान का प्रयत्न भी किया है। उन्होंने नारी उध्दार के लिये आह्वान किया है जो गांधीदर्शन के सर्वथा अनुरूप है।

दहेज प्रथा का विरोध :

गांधीजी ने अपने समाज संबंधी दृष्टिकोण के अंतर्गत दहेज प्रथा का डटकर विरोध किया था तथा दहेज की इस अनिष्टकारी प्रथा को समाज से उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया था। सियारामशरणजी भी दहेज प्रथा के कट्टर विरोधी थे। दहेज प्रथा के कुप्रभाव का संकेत इनकी 'नृशंस' कविता में परिलक्षित होता है। इस कुप्रथा ने न जाने कितने परिवारों और कितनी ही कन्याओं का जीना दूभर कर दिया है। इस कुरीति के नष्ट हुए बिना

---

१. गोपिका : पृ. १०५

हिन्दू समाज को उन्नति संभव नहीं है। अत: उन्होंने समाज की इस कुरीति पर कुठाराघात करते हुए इस कुप्रथा से समाज को मुक्त होने का आहवान किया है। 'नृशंस' में कवि ने दहेज की समस्या को केन्द्र में रखकर इस कुप्रथा से पीड़ित एक परिवार का करुण चित्र अंकित किया है। कविता छोटे छोटे शीर्षकों में विभक्त है जिसका संबंध माँ, बेटो और बाप से है। कविता के आरंभ में ऋणभार से ग्रस्त पिता की विवशता का अंकन किया गया है। एक कन्या का पिता सिर से पाँव तक महाजन के कर्ज में डूबा हुआ है। उसमें इतना सामर्थ्य नहीं है कि वह अपनी बेटी के विवाह के लिये अपेक्षित दहेज की धनराशि जुटा सके। बेटी की बढ़ती हुई उम्र तथा उधार ली गई धनराशि की समाप्त होती हुई अवधि – इन दोनों ही बातों से वह अत्यधिक चिंतित है। बाहर महाजन ताक लगाये हैं और घर में पत्नी बार बार बेटी के विवाह न हो सकने पर पति को परेशान करती है। रोज की इस कोच कीच से वह तंग आ जाता है। वह पत्नी को समझाता है कि उसका सर्वस्व ऋणदाता के अधीन है अत: वह दहेज की व्यवस्था नहीं कर सकता :

"बाहर चपेट है महाजन की,
बीत रही अवधि उधार लिये धन की।
घर में भी बात सुनता हूँ यही, –
कन्या के विवाह की अवस्था चली जा रही।
किस किस ओर अवलोकूँ मैं,
किसे किसे निरवधि: न होने दूँ, रोकूँ मैं।"[1]

माँ भी पिताके समान दहेज व बेटी के विवाह की समस्याको लेकर चिंताकुल है। बेटी माता पिता की चिंताकुल अवस्था को देखकर व्यथित हो जाती है। उसे माता पिता की व्यथा का कारण ज्ञात है। वह माँ को समझाने का भरसक प्रयत्न करती है किंतु उसकी समस्त कोशिशों के बावजूद भी न तो वह अन्न का दाना ग्रहण करती है और न जल ही लेती है। बेटी के विवाह की चिंता ने उसके शरीर को रोगग्रस्त कर दिया है।

---

१. आर्द्रा : 'नृशंस' कविता : पृ. ३३

इस प्रकार माता पिता को अनेकानेक चिंताओं से घिरा हुआ पाकर उसे असीम वेदना होती है। जब उसे ज्ञात होता है कि उसके पिता घर बेच रहे हैं तो उसके मन को गहरी ठेस लगती है। वह अपनी मातृभूमि को किसी भी कीमत पर बिकते हुए नहीं देख सकती। पिता को चिंताभार से मुक्त करने के लिये वह विष खाकर आत्महत्या कर लेती है। इस प्रकार सामाजिक पीड़ा में डूबे हुए माता पिता को पुत्री की मृत्यु संघर्ष की वेदना को भी झेलना पड़ता है। माँ और पिता बेटी की मरणासन्न अवस्था को देख व्यथित हो उठते हैं। यहाँ माता पिता दोनों ही पुत्री के विषपान के उपरांत जिस विषाद में डूब जाते हैं उससे एक सामाजिक उद्देश्य की सिध्दि होती है क्योंकि वह विलाप केवल वैयक्तिक होकर ही नहीं रह गया :

"रक्षा का करु मैं यत्न बेटी किस भाँति आज,
जाने कहाँ खो गई है मेरी लाज।
मृत्यु से बचाके तुझे,
कौन लाभ होगा मुझे;
छीन लेगा शीघ्र ही तुझे समाज।"[१]

इसी दहेज-प्रथा के कारण समाज में अनमेल विवाह की प्रणाली भी कन्याओं के लिये अभिशाप बन गई है। दहेज न दे सकने की स्थिति में गरीब माँ बाप सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाये रखने के चक्कर में अपनी बेटी का विवाह उसकी उम्र से बहुत बड़े व्यक्ति से करने पर मजबूर हो जाते हैं। सियारामशरणजी अनमेल विवाह के विरोधी रहे हैं। इस कविता में उन्होंने हिन्दू समाज में प्रचलित इस प्रथा के कारण कन्याओं की दुर्गति पर व्यंग्य किया है :

"वय से भी है समृध्द,
जान पड़ता है वह मेरे पिता से भी वृध्द।
करके दहेज का पिनाक-भंग,

---

१. आर्द्रा : 'नृशंस' कविता : पृ. ४६

मेरी जानकी का वर होगा वह एक संग।"[१]

पिता पहले ही बेटी की आत्महत्या से दु:खी है। दूसरे, समाज के लोग झूठी सहानुभूति दर्शाकर उसके शरीर को दग्ध करते हैं। उनकी यह सहानुभूति उसके लिये असहय हो जाती है। कवि ने समाज को घातक कंस की संज्ञा दी है :

"घातक - समाज- कंस,
सौंप दूँ स्वयं मैं तुझे कन्या यह रे नृशंस ?
आप ही इसे मैं मार डालूँगा।
तेरी यह आज्ञा मैं न पालूँगा।
प्रतिदिन तीव्र भर्त्सना के संग
निर्दय अनादरों से भंग कर अंतरंग,
क्रूर कटु बातों में मिलाके विष है दिया,
कन्या के सदैव चुपचाप उसे है पी लिया।
राजकन्या कृष्णा ने पिया था विष एक बार,
मेरी जानकी ने पिया रात दिन लगातार।"[२]

कन्या का पिता अपनी बेटी को उस निर्दय समाज के हाथ में सौंपने की अपेक्षा स्वयं ही उसे विष पिलाकर सदा के लिये उसे पीड़ा से मुक्त करने का निर्णय करता है। अंत में वह बेटी से स्वर्ग में क्षमा मांगने का वचन लेता है और बेटी को इस संसार से हमेशा के लिये विदा करता है।

इस प्रकार प्रस्तुत कविता में कवि ने दहेज की समस्या की ओर संकेत करते हुए यह प्रकट करना चाहा है कि किस प्रकार दहेज की कुप्रथा के कारण असंख्य कन्याएँ अनब्याही रह जाती हैं या अपनी उम्र से दुगुनी उम्र के व्यक्ति के साथ विवाह का समझौता करने पर विवश कर दी जाती है। आर्थिक

---

१. आर्द्रा :'नृशंस' कविता : पृ. ४४
२. वही : पृ. ४६

विपन्नता के कारण जिनका विवाह नहीं होता उसे किस प्रकार भर्त्सना व अपमान पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए प्रतिदिन तीखे वचन बाणों का विष पीना पड़ता है। अंत में कुछ कन्याएँ माता पिता को चिंताभार से मुक्त करने के लिये मृत्यु का वरण करती हैं। चूँकि इस कविता के पात्र समाज व्दारा पीड़ित है अत: कवि ने समाज को घातक नृशंस कंस की उपमा दी है।

मद्यपान निषेध का आग्रह :

मादक द्रव्यों का सेवन आत्मा को कमजोर और शरीर को बलहीन बनाता है। समाज सुधारक गांधीजी का आदर्श समाज वह है जहाँ पर प्रत्येक मनुष्य में आत्मबल हो और शरीर से पुष्ट हो। अत: गांधीजी ने समाज सुधार एवं आर्थिक समृध्दि को ध्यान में रखकर मादक द्रव्यों के सेवन का विरोध किया था। वे समाज के नैतिक पतन का कारण इन्हीं मादक द्रव्यों के अतिशय सेवन को ही मानते हैं। इससे समाज की नींव हिलने लगती है और समाज का विकास अवरूध्द हो जाता है। सियारामशरणजी ने यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से तो मादक द्रव्य के सेवन का विरोध नहीं किया, किंतु इन मादक द्रव्यों के सेवन से अध:पतन को प्राप्त मानव की पाशविकता का करूण चित्र अंकित किया है। 'अनाथ' में शराब के नशे में चूर काबुली पठान का नैतिक अध:पतन का चित्र अंकित किया गया है। यह पठान नशे में मदमत्त हो इतना पाशविक हो उठता है कि यमुना के बार बार गिड़गिड़ाने पर भी वह उसकी एक नहीं सुनता और उसके साथ मनमानी करता है :

"काबुली था शराब में चूर,
चढ़ा था उसे नशा भरपूर।
कहा -"हमको उससे क्या काम,
चुका दे अभी हमारे दाम।"[१]

नशे में चूर होकर वह जबर्दस्ती यमुना का हाथ पकड़ लेता है और उसे घसीटता हुआ अपने घर ले आता है। यमुना पहले ही दुर्भाग्य की मारी

---

१. अनाथ : पृ. २६

है उस पर अब उसके सम्मुख अपनी इज्जत बचाने का प्रश्न भी उठ खड़ा होता है। कवि का मन उस अबला नारी की करुण दशा को देख क्षुब्ध हो उठता है। यमुना का क्या हाल हुआ यह लिखने में उसकी लेखनी सहम जाती है। 'उन्मुक्त' में भी कवि ने नशे में चूर लौहव्दीप के सेनानियों की अभद्रता का चित्र अंकित किया है। ये सैनिक शराब पीकर मत्त हो रहे थे इस पर वे विषय का भी मद पिये थे। वे दुगुने नशे में मदमत्त होकर इतने विवेकशून्य हो गये थे कि उन्हें अच्छे बुरे का अहसास नहीं रह गया था :

"माँ व्याकुल हो खोज रही थी मारी मारी,
पकड़ ली गई मत्त सैनिकों से बेचारी।
मत्त, विजय-मद-मत्त, सहज दुगुना मद पीकर
फैले थे वे सभी ओर, सम्पूर्ण नगर पर
था उनका अधिकार।"[१]

इन मदमत्त सैनिकों ने उस अबला हेमा के साथ ऐसा अमानुषिक व्यवहार किया जिसका वृत्तांत भर पढ़ने के लिये अपार धैर्य की आवश्यकता थी। नशे में चूर उन सैनिकों ने उस अबला पर बलात्कार किया, उसे असीम यातनाएँ दी और उसे रातभर जिलाये रखा। यहाँ कवि ने मदोन्मत्तता को घृणित मानकर उसकी निंदा की है।

समाज की इन कुरीतियों के अतिरिक्त कवि ने अन्याय, अत्याचार एवं शोषण का भी विरोध किया है।

सामाजिक अन्याय, अत्याचार एवं शोषण का विरोध :

सियारामशरणजी ने अपनी कविताओं में शोषण, अत्याचार, अन्याय जैसी सामाजिक कुरीतियों और मनुष्य की असामाजिक भावना पर व्यंग्य किये हैं। ये व्यंग्य अधिकांशत: परिस्थितियों के वैषम्य व्दारा प्रकट हुए हैं। 'एक फूल की चाह', 'अग्नि परीक्षा', 'डाक्टर', 'लाभालाभ', 'नाम की प्यास',

---

१. उन्मुक्त : पृ. ४९

'पुनरपि' आदि कविताओं में जहाँ अछूत प्रथा, धार्मिक पाखण्ड, दम्भ, लोभ, आत्मश्लाघा, तथा मृगतृष्णा आदि बुराइयों पर हृदयग्राही व्यंग्य किये हैं। वहीं 'अनाथ' में ग्राम्य जीवन के परिप्रेक्ष्य में जमींदारीप्रथा, बेकारी, मालगुजारी, पुलिसों के हृदयहीन अत्याचार एवं शोषण वृत्ति आदि सामाजिक कुरीतियों और अत्याचारों पर प्रहार किया गया है।

'अनाथ' में तत्कालीन विगलित सामाजिक जीवन का चित्रण किया गया है। जिस समय 'अनाथ' लिखा गया उस समय भारतीय समाज में सामंती व्यवस्था कायम थी। जमींदार और शेठ साहूकार व्दारा किसानों का शोषण हो रहा था। इसी सामाजिक परिवेश में सियारामशरणजी ने 'अनाथ' की रचना की।

'अनाथ' में निर्धन कृषक मोहन की कथा अंकित है। मोहन का पुत्र मरणासन्न अवस्था में तड़प रहा है। किंतु गरीबीके कारण उसका इलाज नहीं हो पाता। मोहन किसी प्रकार मन मारे बैठा है। आज वह किसके व्दार पर भीख माँगने जाये? जमींदार एवं महाजनों ने उसका शोषण कर कर के उसे छारखार कर डाला है :

"मोहन भी है वहीं मौन बैठा मन मारे-
भीख माँगने जाय आज वह किसे व्दारे?
है कोई भी नहीं उसे ऋण देने वाला -
महाजनों ने छार-खार उसको कर डाला।"[1]

ऐसी शोचनीय अवस्था में यमुना के सम्मुख अश्रुपात करने के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं। पेट की क्षुधा को शांत करने के लिये मोहन अपना एक मात्र लोटा गिरवी रखने जाता है। दैव योग से लौटते समय चून मिल जाता है। वह कल्पना लोक में विचरण करते हुए अपने परिवार-जनों को प्रसन्न मुद्रा में देखता है। किंतु इस बात का अहसास होते ही कि उसके पास

---

१. अनाथ : पृ.४

का चून परिवारजनों का पेट भरने के लिये पर्याप्त नहीं, उसकी समस्त कल्पनाएँ चकनाचूर हो जाती हैं। तभी उस पर एक और मुसीबत आ पड़ती है। उसे बेगार में पकड़ लिया जाता है। मोहन अनुनय-विनय कर मुरली की बीमारी का वास्ता देता है, किंतु दरोगा का सिपाही उसे लात मारने की धमकी देता है। उसके धक्के से मोहन के हाथ से पोटली गिर जाती है और आटा जमीन पर बिखर जाता है। वह चौकीदार मोहन को अपमानित कर ठोकरें मारता हुआ थाने ले जाता है जहाँ उसके हाथों में पंखे की डोर थमा दी जाती है। वह सिपाही मोहन को बेंत मारते हुए कहता है :

"बदमाश कहीं का, जरा नहीं डरता है;
बेहया जोर से हवा नहीं करता है।"[१]

मोहन इस अपमान एवं मार को सहकर भी चुप रहता है और तीव्रगति से पंखा झलने लगता है। इस प्रसंग के चित्रण व्दारा कवि ने एक ओर पुलिस की निर्दयता का चित्रण किया है तो दूसरी ओर मोहन को भूख की ज्वाला में तड़पते हुए और दरोगा के कुत्ते को भरपेट भोजन करते हुए दिखाकर सामाजिक विषमता पर भी व्यंग्य किया है। काबुली पठान और जमींदार के अत्याचार में तद्युगीन समाज का चित्र भी प्रत्यक्ष हो उठा है।

मोहन थाने से छूटता है तो उसे मालगुजार वाले पकड़ कर ले जाते हैं और भयंकर यातनाएँ देते हैं। ये मालगुजार वाले इतने अन्यायी हैं जो बेगार में काम तो करवा लेते हैं किंतु बदले में एक कौड़ी भी नहीं देते। कवि ने ऐसे ही अत्याचारी शोषकों के अन्याय एवं अत्याचार की ओर संकेत किया है :

"हमको पकड़ बेगार में जो लोग लेते काम हैं-
अन्याय कैसा है कि वे देते न एक छदाम हैं।"[२]

---

१. अनाथ : पृ. १७
२. वही : पृ. २९

समाज के इस अन्याय के विरुध्द मोहन का हृदय चीत्कार कर उठता है :

"पशु-तुल्य हम लाखों मनुज हा ! जी रहे क्यों लोक में,
जीते हुए भी मर रहे पड़कर विषम दु:ख शोक में।
हा ! दैव, क्यों निस्सार यों जीवन हमारा है किया ?
दुख भोगने के ही लिये क्या जन्म है हमने लिया ?"[1]

कवि यह सोचने पर मजबूर हो जाता है कि क्या इस अन्याय एवं अत्याचार का अंत कभी नहीं होगा ? कृषक, मजदूर, इत्यादि श्रमिक वर्ग के लोग लहूपसीना एक कर अन्न उपजाते हैं, किंतु उनके व्दारा श्रम से उपजाया हुआ अन्न उन्हें प्राप्त नहीं होता है। इस अन्न का कुछ भाग तो मालगुजारवाले ले जाते हैं और कुछ शेठ साहूकार ले जाते हैं। इसी अन्न के अभाव में श्रमिक लोगों को कष्ट झेलना पड़ता है। उन्हें अपना उचित भाग कभी नहीं मिल पाता। यह अन्याय नहीं तो और क्या है ? गांधीजी के समान सियारामशरणजी भी अन्याय, अत्याचार एवं शोषण को घातक मानते हैं। उन्होंने इस कविता में शोषण की दुष्प्रवृत्ति पर प्रहार किया है। इसमें शोषण के विरुध्द जन सामान्य की चेतना को जागृत करने और शोषक दल के प्रति चुनौती का स्वर भी मुखरित हुआ है :

"हे देशवालो, तुम सतालो और जितना हो सके,
हम दीन हैं तुम बल जतालो और जितना हो सके,
यह याद रखना, किंतु तुम भी बच नहीं सकते कभी -
बस एक घर की आग से है गाँव जल जाता सभी।"[2]

इस प्रकार 'अनाथ' में वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की बुराइयों का ही दिग्दर्शन कराया है।

---

१. अनाथ : पृ. २९
२. वही : पृ. ३०

'आर्द्रा' में भी कवि ने समाज के अन्याय और क्रूरता के प्रति क्षोभ प्रकट किया है। 'एक फूल की चाह' में उनका व्यंग्य अत्यंत सचोट है। इस कविता में उन्होंने हिन्दू समाज की रूढ़िवादिता पर प्रहार किया है। 'अग्नि परीक्षा' में व्यक्ति के आडम्बर एवं समाज भय से त्रस्त मनोदशा का वर्णन हुआ है। गुलाब चंद की पत्नी को साम्प्रदायिक उपद्रवी अपहरण कर ले जाते हैं। गुलाबचंद के सम्मुख बार बार यह दृश्य उपस्थित होता है जैसे वे निकृष्ट उपद्रवी उसे घोर नरक में डालकर उसका सर्वस्व लूट रहे हैं। उसे समाज का भय त्रस्त किये है। अत: वह रह रह कर यह सोचता है :

"कलंक कैसे हा ! मिटाऊँगा,
कैसे मुँह लोगों को दिखाऊँगा।
होती जो अभागी न, तो यह दिन आता क्यों,
मृत्यु से भी घोर दु:ख पाता क्यों ?"[1]

जब वे अपने भाग्य को कोस रहे थे उसी समय उन्हें सुभद्रा द्वार पर खड़ी हुई दिखाई दी। सहसा उनके हृदय में दु:ख, रोष और द्वेष व्याप्त हो गया। सुभद्रा सहसा पति के चरणों में गिर पड़ी। किंतु गुलाबचंद उसे ऐसा करने से रोकने लगे :

"पीछे को हटे वे कह – "राम, राम !
छूना तू न मुझको;
हरके मुसलमान ले गये थे तुझको।"[2]

सुभद्रा ने पति को विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि वह पहले की तरह ही पवित्र है। किंतु गुलाबचंद को पत्नी की पवित्रता पर संदेह था। अत: उसने पत्नी को अंगीकार करने से साफ इन्कार कर दिया :

"ठौर नहीं तेरे लिये घर में,
चाहे तू स्वयं हो सती,

---

१. आर्द्रा : 'अग्नि परीक्षा' : पृ. ६९
२. वही : पृ. ७०

पुण्यवती ।
तुझसे बड़ा है धर्म, कैसे मुँह मोड लूँ,
तेरे लिये कैसे उसे छोड़ दूँ ?"[1]

इस प्रकार धर्म का झूठा आडम्बर भर कर गुलाबचंद ने सुभद्रा को सीता के समान अग्नि परीक्षा देने के लिये बाध्य कर दिया :

"अच्छी बात! वैसी ही परीक्षा अभी दूंगी मैं,
पीछे नहीं हूँगी मैं ।
तो भी यह इतना कहूँगी मैं, -
मुझ पर जैसा क्रूर तुमने प्रहार किया,
नारकियों ने भी नहीं वैसा घोर वार किया ।"[2]

इस प्रकार गुलाबचंद की झूठी जिद के कारण सुभद्रा ने सलिल प्रवेश कर अपनी पवित्रता का प्रमाण प्रस्तुत कर दिया । गुलाबचंद को उस समय होश आया जब उनकी दुनिया लूट गई थी । अब वे समाज की चोट भी झेलने को तैयार थे -

"लौट आ, सुभद्रा, तुझे जाने नहीं दूँगा मैं,
घातक विधर्मियों का पातक न लूँगा मैं,
वार कर तुझ पर,
झेलूँगा समाज भी जो चोट करे मुझ पर ।"[3]

इस तरह प्रस्तुत कविता में सामाजिक प्रतिष्ठा का झूठा दम्भ भरनेवाले गुलाबचंद की क्रूरता पर कवि ने तीखा व्यंग्य किया है । 'डाकू' कविता में कविने समाज के सफेदपोश शोषकों पर प्रहार किया है । उन्होंने शोषण वृत्ति को निंदनीय बताते हुए शोषकों को डाकू के समान ही हिंसक घोषित किया है । इसमें एक ऐसे डाकू का जीवन अंकित है जो समाज का सभ्य और इज्जतदार आदमी रह चुका है । समाज के सफेदपोष साहूकारों ने उसे शोषण कर कर के

----

१. आर्द्रा : 'अग्नि परीक्षा' : पृ. ७२
२. वही : पृ. ७३
३. वही : पृ. ७४ :

कंगाल बना दिया है। उनसे पीड़ित होकर वह व्यक्ति अपनी जीवनधारा बदल कर डाकू बन जाता है। वह डाकू साधु कहलानेवाले उन शोषकों पर प्रहार करते हुए सोचता है :

"उड़ा कर मेरे ऊपर कीच
मुझे कहते-फिरते जो नीच,
जरा देखें वे अपनी ओर; -
सुधार्मिकता वह अपनी घोर।
हड़पकर औरों के घर व्दार,
नहीं लेता जो कभी डकार।"[१]

यहाँ शोषकों की अनैतिक वृत्ति पर व्यंग्य है। 'नकुल' में भी शोषण का विरोध किया गया है।

मानवतावादी चेतना का निरूपण :

वस्तुत: गांधीवादी संपूर्ण दर्शन मानवीय संवेदना से ही आप्लावित है। यह गांधीवाद का एक प्रमुख अंग है। दूसरे के दुख में सहायता करना, भूखे को अन्न देना, प्यासे को पानी पिलाना, अछूत को छूत बनाना, दलितों को ऊपर उठाना, शोषितों को शोषण से मुक्त करना मुख्य रूप से मानवतावाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं। सियारामशरणजी का कवि इस भौतिकता से संपृक्त युग में मानवतावाद का आग्रही रहा है। गांधीजी के प्रभाव के कारण ही उनमें जनकल्याण की भावना बलवती हो गई है। गुप्तजी की संपूर्ण काव्य चेतना का धरातल विशुध्द मानवीय है। वह हमें शोषण, पाखण्ड, धूर्तता, अन्याय और बलात्कार से घृणा करना सीखाता है, उसे मिटाने की प्रेरणा देता है तथा एक नवीन स्वस्थ मानव संस्कृति के निर्माण की प्रेरणा देता है। सियारामशरणजी चूंकि मानव सुधार की भावना को लेकर चले हैं अत: क्षमा, करुणा, त्याग, उत्सर्ग, सत्य अहिंसा तथा प्रेम की उदात्त भावना से उनका संपूर्ण काव्य

---

१. आर्द्रा : 'डाकू' : पृ. २८

अनुप्राणित है। इसी मानवतावादी चेतना से अभिभूत होकर गुप्तजी ने दलितों के दुःख से दुखी होकर करुण भावों की सृष्टि अपने अधिकांश काव्यों में की है। वे दुर्बल और सताये हुए प्राणियों की सहायता के लिये सदैव तत्पर रहते हैं। मानवीय धरातल पर ही काव्य में करुणा का स्वर मुखरित होता है।

इस प्रकार की कविताओं में कवि अपनी व्यक्तिगत पीड़ा को भूलकर मानव मात्र की पीड़ा से अभिभूत हो उठा है। उसकी अनुभूति समष्टिगत हो गई है। इनमें लोक मंगलिक तत्व का ही निरूपण कवि ने किया है।

'अनाथ' उनकी सर्वप्रथम मानवतावादी काव्यकृति है। इसमें सियारामशरणजी का पददलित मानवता के प्रति संवेदनशील रूप प्रकट हुआ है। कथा का नायक मोहन तत्कालीन जनता की सरलता तथा मौन रहकर अत्याचार सहन करने की मनोवृत्ति का प्रतीक है। 'अनाथ' में दुख, दैन्य तथा निराशाजन्य वेदना का वर्णन कर कवि ने समाज के प्रति सशक्त व्यंग्य कर इसका पर्यावसन करना चाहा है।

'अनाथ' के समान 'दूर्वा-दल', 'विषाद', 'आर्द्रा', 'आत्मोत्सर्ग', 'पाथेय', 'मृण्मयी', 'उन्मुक्त', 'दैनिकी', 'नकुल' एवं 'अभूतपुत्र' आदि काव्यकृतियों में भी उनका मानवतावादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। उनके मानवतावाद में सर्वोदय की भावना सर्वोपरि है। यही कारण है कि उनकी सहानुभूति स्नेह और विनम्रता से संपृक्त जान पड़ती है। वे मन एवं कर्म से मनुष्यता के अत्यधिक निकट हैं। अपनी इसी मानवीय करुणा के कारण बाढ़ का दृश्य देखकर उनकी मानवता चीत्कार कर उठती है :

"सोते थे कुटी के बीच दीन वे,
शंका-सोच-हीन वे,
ऐसे में कराल यह तेरी बाढ़ आ गई,
चारों ओर आर्त ध्वनि छा गई,

किसको बचावे कौन,
ऐसे में किसी के काम आवे कौन;
चढ़ सके भाग जो चढ़े वे किसी वृक्ष पर
प्राणों पर खेलकर,
पाणी प्राणहीन-से
सहसा विपत्ति के प्रवाह में विलीन से।"[1]

वह दलितों को इस दलित एवं पीड़ित अवस्था से उबारना चाहता है। अत: धनिकों से गरीबों की सहायता करने का पुण्य कार्य करने को उद्बोधित करता है। 'वृध्द' कविता में कवि ने मृत्यु शैया पर लेटे हुए वृध्द के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है। यह वृध्द असीम वेदना को झेलते हुए मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है। उसकी आँखे निस्तेज हो गई हैं, दाँत टूट चुके हैं। कमर झुक गई है। बार बार पड़नेवाले खांसी के दौरे से उसका दम घुटने लगता है। कवि का मन उसकी इस दयनीय अवस्था को देखकर करुणा विगलित हो जाता है। अत: वह चाहता है कि उसका जीवन दीप बुझ जावे।

कवि की वैयक्तिक करुणा का इतना अधिक प्रसार हो गया है कि वह समष्टिगत वेदना का भी अतिक्रमण कर प्रकृति तक व्याप्त हो गई है। कवि का हृदय अपनी वेदना के साथ अन्य की वेदना से भी अभिभूत है। इसी कारण फूल को असमय मुझति हुए देख उन्हें दुख होता है। वे फूल के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करते हुए लिखते हैं :

"अभागे फूल मुरझाने लगा तू;
सताया काल से जाने लगा तू।....
.... हुआ क्यों हाय! यह चिर दुख भोगी,
दयामय! क्या दया इस पर न होगी?"[2]

---

१. दूर्वा-दल : 'बाढ़' कविता : पृ. ९१-९२
२. वही : 'अभागा फूल' : पृ. १८

'आर्द्रा' की 'डाकू', 'नृशंस', 'खादी की चादर', 'अब न करूँगी ऐसा', 'भोला' आदि कविताओं में पीड़ित मानवता के प्रति संवेदना प्रकट हुई है। समाज में घोर आर्थिक विषमता कष्टप्रद है। इससे अनेक दु:खों का उद्भव होता है। किंतु निर्धनों की स्थिति तभी सुधर सकती है जब अमीर स्वयं अपनी स्वेच्छा से निर्धनों के हित में अपना धन व्यय करें या उनके प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाये। 'चोर' और 'अब न करूँगी ऐसा' कविताओं में निर्धन के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह गांधीवादी विचारधारा के सर्वथा अनुकूल है। निर्धनों के प्रति उपेक्षा भाव रखने के कारण ही समाज में दुर्व्यवस्था का प्रादुर्भाव होता है। समाज में निम्न वर्ग के लोगों में व्याप्त हीनताभाव दूर करने का एकमात्र उपाय गांधीवादी अर्थव्यवस्था का समर्थन करना है। "गांधीवाद कहता है कि हम अमीर के हृदय को इस तरह बदल देंगे और उसके शोषण का मुँह इस तरह बंद कर देंगे कि वह स्वयं अपनी खुशी से साधारण लोगों की श्रेणी में उतर आयेगा। यह परिवर्तन ऊपर से लादा हुआ परिवर्तन न होकर हृदय परिवर्तन होगा।"[1] अपराधी का हृदय अपनी भूल पर पश्चाताप से भर उठे, यही वास्तव में हृदय परिवर्तन है। 'चोर' कविता में जब दयावती के मालिक को उसकी निर्दोषिता का प्रमाण मिलता है, तब उस अबला विधवा नारी के अपमान से वह लज्जित हो उठता है। उसके हृदय में पश्चाताप की अग्नि जल उठती है :

"मन को न दे सका मैं तोष आप।
विधवा अभागी का असह्य ताप।
करने विदग्ध लगा मेरी देह भर को
भेजा एक आदमी दयावती के घर को।"[2]

किंतु दयावती चोरी का कलंक लगने पर घर छोड़कर न जाने कहाँ चली गई थी। अत: मालिक उस पर यह जाहिर नहीं कर सका कि वह निर्दोष है। उसे इस बात का अफसोस सालता रहा :

---

१. गांधीजी की देन : डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : पृ. ५६
२. आर्द्रा : 'चोर' : पृ. ८३

"आज तक खोजके भी मैं न उसे पा सका।
वह है अदोष, – न मैं उसको जता सका।
लाद कर मेरे अपराध की कलंक-कथा,
सह के असह्य व्यथा
जाने किस गुप्त-वास में है कहाँ;
आ भी नहीं सकती है आज वह हाय! यहाँ।"[1]

'अब न करूँगी ऐसा' में भी ऊँचनीच की सामाजिक समस्या का व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत कर कवि ने गरीब मुलिया के प्रति सहानुभूति प्रकट की है। यह बालिका मजदूरी न मिलने पर दो दिन से भूखी है। कुत्ते को वक्त पर न नहला सकने के कारण उसका मालिक उसे बुरा भला कहता है कोसता है और मारता भी है। समाज के उच्चवर्गीय सभ्य कहलानेवाले लोगों के क्रूर व्यवहार को देख कवि का संवेदशील हृदय करुणा से भर उठता है।

"आह! उसका वह स्वर था कैसा, –
'अब न करूँगी ऐसा'।"[2]

इन पंक्तियों में यही भाव प्रकट हुआ है।

'मृण्मयी' में भी कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण मुखरित हुआ है। काव्य में निरूपित मानवता युग धर्म के अनुरूप है। उसमें आज के जीवन की आरोह-अवरोहमयी गतिविधियों का सुंदर चित्रण हुआ है। 'मृण्मयी' में अभिव्यक्त मानवता आज के संकीर्ण मानवीय विचारों के प्रति आक्रोश का ही प्रतिफल है। मानवता के पतन को देखकर कवि का मन विषादमय हो जाता है :

"पशु से बच भी जायँ, बचा है कौन मनुज से?
आह! मनुज के लिये मनुज है क्रूर दनुज से।"[3]

---

१. आर्द्रा : 'चोर' : पृ. ८३
२. आर्द्रा : 'अब न करूँगी ऐसा' : पृ. १३०
३. मृण्मयी : 'पुनरपि' : पृ. ११०

'मंजुघोष' कविता में बादल और इंद्र के संवाद में बादल द्वारा मानवीय संवेदना प्रकट हुई है। यद्यपि बादल को यह आज्ञा मिली है कि वह आर्यभूमि पर अधिक जल वर्षा न करे। किंतु वहाँ के कृषकों की दयनीय अवस्था को देख, तथा माता वसुंधरा के शुष्क मुख को देख उसका हृदय करुणा विगलित हो जाता है और वह भरपूर जल बरसाता है। जब इंद्र उससे पूछते हैं कि मना किये जाने पर भी उसने अधिक जल क्यों बरसाया। तब वह धरती के दीन-हीन मनुष्यों की दयनीय अवस्था का वर्णन कर उनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करता है :

"तात, तुम सिहर उठे हो सुनके ही बस,
मैं तो चख आया वह रौद्र रस;
फिर यदि अंतर्बाहिय मेरा जले,
दुष्ट क्रीड़ा कांत इस इन्द्र का विधान खले .
मेरे इस मन को;
उचित यही है तब इसके दमन को
तप में लगा दूँ अपने को मैं।"[1]

'भोला' कविता में भी कविका यही स्वर मुखरित हुआ है। इसमें एक ऐसी दुखिया की करुण गाथा अंकित है जिसका एकमात्र पुत्र बहुत बीमार है, उसके जीने की उम्मीद बहुत कम बची है। वृध्दा ने अपने पुत्र के लिये देवता की पूजा बोली हुई है। किंतु इस पूजा को संपन्न करने के लिये पूरा एक रुपया चाहिये, जिसे जुटाना उसके लिये मुश्किल है। बेटे की दयनीय अवस्था और अपनी विवशता पर वह असहाया अबला नारी अश्रुपात करती है। भोला उसकी करुण गाथा सुनकर द्रवित हो उठता है और उसकी सहायता करना चाहता है। किंतु दुर्भाग्यवश वह पैसे की व्यवस्था नहीं कर पाता और इसी बीच परसू का देहांत हो जाता है। इस दुखद समाचार को सुनकर भोला के हृदय पर घूंसा सा पड़ता है उसे रह रह कर यह बात कचोटती है :

---

१. मृण्मयी : 'मंजुघोष' : पृ. ४२

"मेरी बाट जोहती ही बैठी रही दुखिया,
आके इसी बीच नीच काल हाय! उसका
लाल लूट ले गया; अभागा यह मुख मैं
दिखला सकूँगा उसे कैसे ?"[1]

भोला इसी पशोपेश में है कि वह उस भाग्यहीना माँ का सामना कैसे करेगा कि तभी उसे राजमहल से बुलावा आता है। भोला से जब इच्छित वस्तु माँगने को कहा जाता है तब वह अपने लिये कुछ न माँगकर केवल एक ही रुपये की याचना करता है, जिससे कि वह उस असहाय नारी की मदद कर सके। उस अबला नारी की सहायता करके ही वह अपना जीवन धन्य समझता है :

"जाके निज गाँव, उस मैया के चरन मैं,
पहले छुऊँगा, रख दूँगा भेंट अपनी।
एकाएक भूल वह दुःख गये बेटे का,
अमर उठाके मुख कितना असीसेगी।
मैं भी समझूँगा, आज जीवन सुफल है।"[2]

इस प्रकार उसका दान किया हुआ वह अल्प धन भी महत्त्वपूर्ण हो उठता है।

'बापू' में भी दीन-हीन मानवों के प्रति सहानुभूति ही व्यक्त की गई है। जिस समय गांधीजी राजनीतिक रंगमंच पर आये थे उस समय राजनीतिक पराधीनता के कारण भारत की निम्नस्तरीय जनता व्याकुल हो उठी थी तथा उन्हें सामाजिक उपेक्षा भी सहनी पड़ती थी। हिंसात्मक विद्रोह की ज्वाला से असंख्य लोगों के नष्ट हो जाने की संभावना थी। ऐसे समय में महात्मा गांधी रक्तहीन क्रांति के दूत बनकर आये। उनके

---

१. मृण्मयी : 'भोला' : पृ. १३८
२. वही : पृ. १४५

आगमन से आशा की एक नूतन किरण झलक उठी। उन्होंने निर्भय अकुण्ठित स्वर में सत्य अहिंसा का पावन उपदेश दिया। उनके आगमन से सदियों से दलित एवं पीड़ित लोगों का भाग्य बदल गया। कवि की मनुजत्व के प्रति गहरी आस्था है। 'बापू' में उन्होंने नर में नारायणत्व की प्रतिष्ठा कर मनुजत्व के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है :

"धन्य वह कालतीर्थ कालातीत,
बोला जहाँ नारायण नर में,
'सत्यमेव जयते' अहिंसा गीत
गूँजा है जहाँ से शुद्ध स्वर में।"[१]

बापू के कारण ही यह वसुधा गौरवान्वित हो गई है। उनके संगम में आकर लघु या कनिष्ठ मानव भी सबसे बड़ा होकर उत्तीर्ण हो उठा है। उन्होंने अपने पुण्य कर्मों से इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग की प्रतिष्ठा कर दी है और मानव जैसे लघु प्राणी को भी महत्ता प्रदान की है :

"विश्व महावंश-पाल,
धन्य, तुम धन्य है धराके लाल!...
आकर तुम्हारे नये संगम में
लघु अवतीर्ण है महत्तम में।"[२]

यह बापू की पुनीत वाणी का ही प्रभाव है कि सभी मानव आपस में एक दूसरे से मिलजुल कर रह रहे हैं। यहाँ कवि ने गांधीजी को नारायणत्व के गुणों से अभिमण्डित करके मानवता के उन्नयन की ओर ही संकेत किया है। अंतिम कविताओं में मानवता के ह्रास पर कवि का क्षोभ व्यक्त हुआ है। जीवन की विडम्बना, रक्तपात तथा हिंसा से त्रस्त यह पृथ्वी क्या आज विनाश के पथपर जा रही है? पीड़ितों की पीड़ा को देख कर कवि का मन उद्वेलित हो कह उठता है :

---

१. बापू : पृ. २०
२. वही : पृ. २८

"पीड़ितों के क्रंदन का पारावार
क्षुब्ध है धरा की मर्म-बेला में,
पुण्य की जघन्य अवहेला में
दुख के तरंग है उमड़ते,
दीर्घोच्छ्वास हो-हो कर फूट फूट पड़ते।"[1]

सबकुछ होते हुए भी कवि निराश नहीं है। उसे प्रकृति एवं मानव दोनों में विश्वास है। वह मानव के भविष्य के प्रति आश्वस्त है।

'दैनिकी' की अधिकांश रचनाएँ लोकमांगलिक चेतना से आप्लावित है। इनमें या तो सामाजिक व्यवस्था के पुनर्गठन की प्रेरणा है या उपेक्षित और शोषित समुदाय के प्रति संवेदना। कवि युगों से पददलित, निरीह त्रस्त मानवों के प्रति करुणा भाव प्रदर्शित कर मानवता का संदेश देता है।

'उन्मुख' कविता में कवि ने प्रतीकात्मक ढंग से पृथ्वी की महिमा का गुणगान किया है तथा इस धरती को ही स्वर्ग के रूप में परिणत करने में ही मनुष्य की सफलता है यह विचार प्रकट किया है :

"अम्बर कहता है, - रे उन्मुख, रह तू अपने थल पर,
वहीं आ मिला हूँ मैं तुझसे तेरे वसुधा तल पर।"[2]

'स्वप्न भंग' कविता में धरती के दीन हीन उपेक्षित प्राणियों के प्रति संवेदना प्रकट की गई है। दैनिक जीवन की भौतिक आवश्यकताओं के अभाव में मानव जीवन कितना पीड़ामय हो उठता है इसका चित्रांकन कवि ने इस कविता में किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट करना चाहा है कि नंदनवन के प्रसूनों से काव्य वधू का श्रृंगार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसका वास्तविक श्रृंगार तो धरती के उपेक्षित और अकिंचन प्राणियों के चित्रण में ही संभव है :

---

१. बापू : पृ. ३९-४०
२. दैनिकी : 'उन्मुख' : पृ. ६६

"सोचा क्या है इस प्रसून का, मैं यह तुझे बताऊँ ?-
इच्छा है, इसको लेकर मैं चुपके-चुपके जाऊँ,
जड़ दूँ अपनी काव्यवधू के जूड़े में पीछे से ।
महक उठे मेरे आँगन में ऊपर तक नीचे से ।"[1]

किंतु कवि को शीघ्र ही यथार्थ भूमि पर आ जाना पड़ता है । 'विकलांग' कविता में भी मानवता के पतन पर कवि के हृदय की हूक प्रकट हुई है :

"उन छिन्नांगों की चिल्लाहट रह रह कर अप्रतिहत,
करती होगी वहाँ पवन की छाती में क्षत शत शत,।
नहीं प्रभावित यहाँ तनिक भी उनकी उस तड़पन से,
जड़ विकलांग हमारे मन हैं श्रवण और लोचन से ।"[2]

'नर किंवा पशु' नामक कविता में करुणा की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति के साथ साथ मानवीय संवेदना का प्रसार पशुओं में दिखाकर इन गुणों का साधारणीकरण किया है । इसमें एक अकिंचन मजदूर की रुग्ण पत्नी दवाइयों के अभाव में मर जाती है, किंतु वह मजदूर पत्नी के निधन पर भी शोक नहीं मनाता । वह यह सोचकर संतुष्ट है कि उसकी पत्नी मर कर प्रतिदिन भूखे रहने से बच गई । किंतु श्यामा को रोते हुए देखकर उस मज़दूर का संयम भी टूट जाता है और अनायास ही उसकी आँखे नम हो जाती है ।

कवि मानव के लघु जीवन को भी अमर संदेशों से भर देना चाहता है । उसकी कामना है कि मानव अपने जीवन मूल्यों को पहचाने अपने अंदर छिपी असीम शक्ति से अवगत हो ।

'नकुल' काव्य में भी मानव को हीन भावना से मुक्त होकर उसको उत्कर्षात्मक रूप प्रदान करने का आग्रह प्रकट किया है । अब तक मानव और

---

१. दैनिकी : 'स्वप्नभंग' कविता : पृ. ४४
२. दैनिकी : 'विकलांग' : पृ. ७

देवताओं में से देवताओं को ही उत्कर्ष प्रदान किया जाता रहा तथा पृथ्वी के मानव की सदा उपेक्षा होती रही। गांधीजी ने मानव महत्ता की प्रतिष्ठा के लिये भरसक प्रयत्न किये।

सियारामशरणजी ने युगीन चेतना से प्रभावित होकर मानव के महत्त्व को प्रतिपादित करने के लिये मानव और वसुधा में आस्था स्थापित करने पर बल दिया। मानव महत्ता की प्रतिष्ठा के निमित्त ही कवि ने अर्जुन को मानव जाति के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया है। अर्जुन धरती की सबल शक्ति से संपन्न और हीनता भाव से सर्वथा मुक्त है। इसीलिये वह देवलोक के अपार वैभव को देखकर भी चकित नहीं होता और साधारण वेशभूषा में ही गौरव का अनुभव करता है। वह सात्त्विक भावों से संपन्न, अपार पौरुष से अभिमंडित सच्चे अर्थ में पृथ्वी पुत्र है। उसके इस महत्तम रूप में ही मानव का गौरव सुरक्षित है। अर्जुन की अनासक्ति को प्रदर्शित कर कवि ने प्रकारांतर से मानव विजय की ही घोषणा की है। इसमें कवि ने अपना यह विश्वास प्रकट किया है कि मानव अपनी अल्पशक्ति के साथ भी आध्यात्मिक शक्ति का विकास कर मनुष्यत्व में देवत्व की प्रतिष्ठा कर सकता है। 'नकुल' में देवों की अपेक्षा मिट्टी के मानव को ही गौरवमण्डित किया गया है। "युधिष्ठिर मणिभद्र संवाद में मणिभद्र के व्याज से गांधीजी की उस ऐतिहासिक इंग्लैण्ड यात्रा का वर्णन किया है जिसमें गांधीजी अपने साधारण दैनिक वेश में ही वहाँ के सम्राट से मिले थे और सम्राट को उनके लिये सहस्त्रों वर्षों की पुरानी परंपरा तोड़ देनी पड़ी थी। इस प्रसंग के अवतरण से कवि मानव की महत्ता को प्रतिष्ठित करना चाहता है।"[१] मानवीय गौरव का कारण उसकी शक्ति नहीं, वरन् उसकी सेवा, त्याग, अभिमान रहितता, अहंकार शून्यता, दृढता आदि सद्गुण है। प्रेम व्दारा शक्ति का अंत करने में ही मानवता का वास्तविक कल्याण अंतर्निहित है। निम्न पंक्तियों में मानवीय प्रेम की मूल संवेदना को ही अभिव्यक्ति मिली है :

---

१. सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व : डॉ. शिवप्रसाद मिश्र पृ. १३५

"करना है यदि हमें यहाँ यह पाप निवारण,
हो अभीष्ट सर्वत्र प्रेम का पूर्ण प्रसारण,
करना होगा बड़ा त्याग निज सुख जोवो को,
होना होगा स्वयं समर्पित गाण्डीवी को।"[1]

'उन्मुक्त' काव्य नाटक में भी श्री सियारामशरणजी का मानवतावादी स्वर प्रगट हुआ है। उनका कहना है कि मानव मानव का संबंध अत्यंत पवित्र और हृदय की पावनता पर आधारित है। मानवता के पतन पर व्यथा प्रदर्शित करते हुए उन्होंने कहा भी है :

"वह सैनिक भी न था और कुछ, वह था मानव,
ऐसा मानव, लाभ उठा जिसको शिशुता का
किसी इतर ने चढ़ा दिया था उस पशुता का
अपर का वह खोल। आत्म विस्मृति ने छाकर
उसका बोध विलोप कर दिया था, मैं उस पर
रोष करूँ या दया ?"[2]

मानवता के विजय की पराकाष्ठा यह है कि गुणधर अपने पर प्रहार करनेवाले उस घायल सैनिक पर भी क्रोधित नहीं होता वरन् वह उसके प्रति दयाभाव ही प्रकट करता है।

गुणधर के समान पुष्पदंत के चरित्र में भी कवि ने मानवीय संवेदनाओं का निरूपण किया है। पुष्पदंत हिंसक मार्ग का समर्थक होते हुए भी हृदय से कोमल, दयावान और संवेदनशील है। युध्द में आहत सैनिक की आर्त पुकार सुनकर उसका हृदय करुणा से द्रवित हो उठता है। इतना ही नहीं हेमा के प्रति किये गये बर्बरतापूर्ण अमानुषिक अत्याचार की कहानी सुनकर भी उसका हृदय विचलित हो जाता है। इसी मानवीय संवेदना से अनुप्रेरित होकर वह वसुधातल के पददलित एवं पीड़ित प्राणियों की मुक्ति के

---

१. नकुल : पृ. १११
२. उन्मुक्त : पृ. ८१

लिये प्रस्तुत होता है तथा सबके हित के लिये नव विजय श्री प्राप्त करना चाहता है। स्पष्ट है कि कवि पुष्पदंत के समान विश्व के मानव समुदाय को त्याग और प्रेम के मार्ग पर चलने को प्रेरणा देना चाहता है। मृदुला और वृध्दा भी राष्ट्र को बलिवेदी पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर कुसुमव्दीप की निखिलपीड़ा को दूर करने का प्रयत्न करती दिखाई गई है। इस प्रकार उन्मुक्त काव्य मानवीय करुणा और संवेदना को लेकर ही परिपुष्ट हुआ है। काव्य के सभी पात्र करुणा और वेदना की भावना से ओतप्रोत है। उन्होंने सभी प्रमुख पात्रों को उच्च मानवीय आदर्शों से अभिमण्डित करके उनमें क्षमा, त्याग, दया, करुणा, उत्सर्ग आदि मानवीय गुणों का चरमोत्कर्ष होते हुए भी दिखाया है।

'आत्मोत्सर्ग' में भी कवि मानवता के पतन पर क्षुब्ध है। उन्होंने साम्प्रदायिकता की कटु आलोचना करते हुए मानव की घोर पाशविक वृत्ति पर प्रहार किया है :

"ध्यान दिलाते हो क्यों इसका,
छोड़ी दया कहाँ तुमने ?
बनकर नीच मचादी कितनी
शोणित-कीच यहाँ तुमने।
निधन किया है निर्दयता से
कितने दीन-अनाथों का,
कैसे पीयूँ यहाँ यह जल मैं
रक्त भरे इन हाथों का।"[1]

'नोआखली में' भी साम्प्रदायिक विव्देष के कारण जो विनाश का भीषण ताण्डव हुआ उसे देखकर कवि की करुणा चीत्कार कर उठी है। 'नोआखली में' उन्होंने कुत्ते के प्रति संवेदना प्रकट की है। कुत्ते में मानवीय संवेदनाओंका उद्रेक होते दिखाकर कवि ने मानव और पशुओं के भाव का साधारणीकरण करना चाहा है :

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. ५१

"अरे कहीं पशु ही होते वे !
पशु में भी है प्रेम उदार,
अपनी इस पीड़ा से प्रकटित
नहीं किया क्या यह तूने ?"[1]

'अमृतपुत्र' में कवि की वैयक्तिक पीड़ा समष्टिगत धरातल पर अभिव्यक्त हुई है। ईशु ख्रीस्ट का संदेश चिरकाल तक मानवता की रक्षा करने में समर्थ है। उन्होंने आत्मबलिदान देकर जन-जन की आत्मा को झंझोड़ा है। उनकी यह अमरवाणी जन जन के मानस में अब भी गूँज रही है :

"ईसु ईश्वर पुत्र पावन ख्रीस्ट वे
विचरते हैं भूमि पर फिर पूर्ववत,
सुन रहे फिर से उन्हें साथी सुजन,
सुन रहा हूँ दूर भी यह मैं यहाँ।"[2]

तत्कालीन समाज के चित्रण में वर्तमान अधोगति के चित्र मिलते हैं। शक्तिशाली वर्ग अपनी सत्ता के मद में किस प्रकार अन्याय करता है इसका विवेचन इसमें किया गया है। इसलिये ख्रीस्ट को अपना बलिदान देना पड़ता है। अप्रत्यक्ष रूप में यह मानवता की ही विजय है। कवि ने ईसा की वेदना और असीम पीड़ा को तत्कालीन मानवता की व्यथा के प्रतीक रूप में ही चित्रित किया है।

'गोपिका' में भी कवि ने वर्तमान मानव के चित्र अंकित किये है और यह दर्शाना चाहा है कि आज का मनुष्य अन्य किसी शक्ति से नहीं वरन् सहजाती मनुष्य से ही भयभीत है। वृंदवाटिका के प्रहरियों की चर्चा करके कवि ने इसी भाव को प्रकट किया है :

"रोक है- तो ऊँचे ये फाटक खुले हैं क्यों ? - इनमें
प्रमत्त गज घूमते निकल जायँ। डर है नरों से ही नरों को क्या ?"[3]

---

१. नोआखली में : पृ. ४४
२. अमृतपुत्र : पृ. ७४
३. गोपिका : पृ. १४६

सरीसृप का प्रसंग आने पर कृष्ण स्वयं मानवता के कुटिल पक्ष पर आक्षेप करते हैं। आज के रक्षक भक्षक भी बन जाते हैं। रक्षक बनने में स्वार्थ सिध्दि की दृष्टि से लोग अपने अंदर ईर्ष्या द्वेष को ही जन्म देते हैं। वृंदवाटिका के प्रहरियों के पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष का वर्णन करते हुए कवि ने आज के समाज के रक्षकों पर व्यंग्य किया है।

कृष्ण के महान रूप का अंकन करना कवि का मूल उद्देश्य रहा है। उन्होंने कृष्ण और गोपिका को संस्कृति के प्रतीक रूप में चित्रित कर नारायण को नर रूप में प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने नर को उत्कर्ष की ओर ले जाने का भी संकेत किया है :

> "अवतारणा है सदा कृष्ण और गोपिका की,
> प्रति नर एवं प्रति नारी में।"

'बुध्द वचन' में उठाई गई समस्याएँ भी मानव मात्र से ही संबंध्द है। ये गाथाएँ मानव में उच्च मानवीय भावनाओं को उत्पन्न करती है उसे उच्चतर मानव मूल्यों से अवगत कराती हैं।

उपसंहार :

संक्षेप में, सियारामशरणजी के काव्यों का अनुशीलन करने पर यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि उनकी कविताओं में गांधीवादी मानवीय संवेदना की अनूठी अभिव्यक्ति हुई है। उनका अधिकांश काव्य साहित्य मानवीय संवेदना से ओतप्रोत है। डॉ. ललित शुक्ल के शब्दों में "सियारामशरणजी की कविता में मानव संबंधी जो चित्रांकन पाया जाता है वह अधिकतर दीन-हीन, निस्सहाय और समाज व्दारा सताये गये व्यक्तियों का है।"[१] सियारामशरणजी का सामाजिक दृष्टिकोण अत्यंत स्वस्थ है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज की कुरीतियों पर व्यंग्य करके समाज के पुनर्गठन के लिये नये रीतिरिवाजों के निर्माण के प्रति आग्रह प्रकट किया है तथा शोषण, अत्याचार, अस्पृश्यता, ऊँचनीचकी भावना आदि सामाजिक दूषणों पर प्रहार कर निर्धन, पीड़ित मानवोंके प्रति संवेदना प्रकट की है तथा मानव मन को उर्ध्वगामी होने का संदेश दिया है।

---

१. सियारामशरण गुप्त : सृजन और मूल्यांकन: डॉ. ललित शुक्ल : पृ. ३६९